

* श्रीमन्नेमिचन्द्रमैदान्तिरुदेवविरचित *

द्रव्य-संग्रह

(आदर्श - टीका - सहित)

अनुवादक

मोहनलाल जैन काव्यतीर्थ,

जवाहरगज, जनलपुर

प्रकाशक

सरल जैन ग्रन्थ भण्डार

जवाहरगज, जनलपुर ।

अष्टम
संस्करण

}

वीर सं० २५८७

श्रुतपञ्चमी

{ मूल्य ॥)

{ १० पैसे

श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती

हमारे चरित्रनायक दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के नदिसर में कणाटकप्रान्तस्य देशीयगण के मुनीवर थे। इस गण में अभयनदी और धीरनदी आदि अनेक विद्वान् सिद्धा 'चक्रवर्ती' पद से विभूषित हुये हैं। हमारे चरित्रनायक को भी यह पद प्राप्त हुआ था।

द्रावडदेशीय प्रतापी राजा चागुण्डराय के साथ हमारे आचार्य प्रवर का अतिशय धार्मिक सम्बन्ध था। इन्होंने विक्रम संवत् ७१५ में चैत्रसुरा पंचमी रविवार को अथर्वबलगुल म लोकप्रियात गोम्मत स्वामी (बाहुबलि) की प्रतिष्ठा की और भी नेमिचन्द्रस्वामी के चरणों की साक्षीपूजक ६६ हजार दीनार (उत्तीत रत्ती सुर्य का सिक्का) का गीय गोम्मतस्वामी के उत्सवादि के हेतु निगुप्त किया था। इससे विक्रम संवत् ७१७ में आपका अस्तित्व तथा दक्षिणप्रान्त को सुशोभित करना निर्विवाद सिद्ध है।

गोम्मतसार के 'गमिकण्य' इत्यादि उद्धरण से निश्चित है कि अभयनदी इन्द्रनी चोरन दी और कनकन दी ये चारों महारु आचार्य हमारे चरित्रनायक के गुरु थे। ये चारों तथा श्रीनेमिचन्द्र का प्राय एक ही समय हुये हैं।

आचार्यप्रवर के उनाये हुये द्रायसप्रद गोम्मतसार, लक्षितार और त्रिलोकसार ये चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। कोई महाशुभाय द्रायसप्रद के कर्ता और गोम्मतसार के कर्ता में विभिन्नता की आशका करते हैं, विचार करने पर यह उचित प्रतीत नहीं होता।

श्रीनेमिचन्द्र स्वामी म्कृत, प्राकृत और कर्नाटकी के प्रौढ विद्वान् थे। आपने प्रधान शिष्य श्रीमाधवचन्द्र शैविक थे जिन्होंने हमारे चरित्रनायक के रचे त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों को टीकाएँ की और उपरोक्त तीनों भाषाओं के प्रौढ जानकार होने से 'शैविक' पद पाया था।

मीहनलाल काव्यतीर्थ।

ॐ नम श्रीगणेशाय ॐ
श्रीमन्नैमिचन्द्र-सिद्धान्त-मन्त्रि-विरचित

* द्रव्य-संग्रह *

(आदर्श-टीका-सहित)

प्रथमोऽध्यायः

जीवमजाय द्रव्यं, जिणवरसहेण जेण णिदिट्ठ ।
देविदविन्दं, वंदं तं सव्वदा मिरमा' ॥१॥

जीवमजाय द्रव्यं, जिणवरसहेण येन निदिष्टम् ।

देवद्रव्यसंग्रहं, वन्दे तं सर्वदा शिरसा ॥१॥

अथार्थ—(जेष) जिस (जिणवरसहेण) तीर्थंकर देव ने (जीवमजाय) जीव और अजीव (द्रव्यं) द्रव्यों (णिदिट्ठ) कहे हैं (देविदविन्दं) इन्द्रों के समूह से नमस्कार करने योग्य (तं) उस तीर्थंकर भगवान को [अर्च = मैं नैमिचन्द्र] (शिरसा) शिर नवा कर (सव्वदा) हमेशा (वन्दे) नमस्कार करता हूँ ॥१॥

२ भावार्थ—मैं (नैमिचन्द्र) उन तीर्थंकर भगवान को शिर नवाकर सदा नमस्कार करता हूँ, निन्दने जीव और अजीव द्रव्यों का संग्रह किया है और जो सो इन्द्रों से वंदनीय है ॥१॥

विशेष—मिथ्यात्व और राग आदि को जीतने वाला जिन कहलाता है । इसलिये असंयत-सम्यग्दृष्टि, धावक और मुनि भी जिन कहे जाते हैं । उनमें बड़े होने से गणधर आदि को निनवर करते हैं । गणधरों के भी प्रधान होने से गणधर आदि 'जिनवररूपम' कहे जाते हैं । तदुक्तम्-जिनाः = असंयतसम्यग्दृष्ट्यादयः, तेषां वरा, गण धरादयः, तेषां रूपम प्रधान जिनवररूपम = तीर्थंकरपरमदेव ।

1] श्रीनेमिचंद्राचार्यविरचिते त्रयसप्तश्लोके

सौ इन्द्रों का विवरण

भगवाणालयचालीसा, वितरदेवाण्य होती बत्तीसा ।
कप्पामर, चउवीसा, चंदो सुरो एरो तिरियो ॥

अथवाथ—(भवयालय) भवनवासियों के (चालीसा) चालीस (वितरदेवाण्य) व्यतर देवों के (बत्तीसा) बत्तीस (कप्पामर चउवीसा) कल्पवासियों के चौबीस (चंदो) चंद्रमा (सुरो) सुर्य (एरो) चक्रवर्ती (तिरियो सिंह [इदि = इस प्रकार, सदिदा = सौ इन्द्र होंति = होते हैं] ॥१॥

भावार्थ—भवनवासियों के ४०, न्यन्तरों के ३२, कल्प-वासियों के २४, ज्योतिषियों के चन्द्र तथा सुर्य २, मनुष्या का चक्रवर्ती १ और तिरियों का सिंह १ इस प्रकार कुल ४० + ३२ + २४ + २ + १ + १ = १०२ इन्द्र होंति हैं । देवों के इन्द्रों में आधे इन्द्र और आधे प्रतीन्द्र होते हैं ॥१॥

जीवद्रव्य के नव अधिकार

जीवो उग्रयोगमयो, अमृत्ति कृत्ता सदहपरिमाणो ।
भोक्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ममोड्ढगई ॥२॥

जीव उपयोगमय, अमृत्ति कर्ता सदहपरिमाण ।
भाक्ता संसारत्थ सिद्ध स विस्मता ऊष्मगति ॥२॥

अथवाथ—(सो) वह जीव (जीवो) जीने वाला (उग्रयोगमयो) उपयोगमय (अमृत्ति) अमृतिक (कृत्ता) कर्मों का कर्ता (सदहपरिमाणो) छोटे बड़े निजशरीर के धरानर रहने वाला (भोक्ता) भोजन के फल को भोगने वाला (संसारत्थो) संसारी (सिद्धो) सिद्ध (विस्मता) स्वभाव से (उड्ढगई) ऊपर को गमन वाला [अथि = है] ॥२॥

भावार्थ—प्रत्येक जीव (प्राणी) जीने वाला, उपयोगमय, अमृतिक, कर्मों का कर्ता, नामकर्म के उदय से प्राप्त अपने होने

यह शरीर के बराबर रहने वाला, शुभागुण कर्मा के फल को भोगने वाला, संसारी, सिद्ध और उच्चगमन करने वाला है।

अर्थात्—जीवत्व, उपयोगमयत्व, अमूर्तिकत्व, कर्तृत्व, स्पन्दे परिमाणत्व, भोक्तृत्व, संसारित्व, सिद्धात् और स्वभाव से उच्चगमनत्वे जीव के ६ अ.पकार हैं।

ॐ श्रीऋषिभिरुक्तं (जीवस्वरूप) का स्पष्टीकरण

तिक्काले चतुपाणा, इन्द्रिय बलमातु, आरुपाणो य
ववहारा मो जीवो, निश्चयणायतो दु चेदण जस्य ॥३॥

त्रिकाले चतु प्राणा, इन्द्रिय बलमायु आरुपाणश्च।

व्यवहारात् स जीव, निश्चयनयत् तु घटना यस्य ॥३॥

अर्थात्—(जस्य) जिसके (ववहारा) व्यवहार मय स (तिक्काले) तीनों कालों में (इन्द्रिय) इन्द्रिय (बल) बल (आतु) आयु (य) और (आरुपाणो) स्वामोच्छ्वास [पन्दे = वे] (चतुपाणा) चार प्राण्य [होति = होते हैं] (दु) और (निश्चयणायतो) निश्चयनय स (जस्य) जिसके (चेदणा) घटना [होदि = होती है] (सो) वह (जीवो) जीव [अर्थात् = है] ॥३॥


भाषाया—जिसके यथायोग्य इन्द्रिया, बल, आयु और स्वामोच्छ्वास प्राण्य होते हैं वह व्यवहारनय से जीव है। और जिसके घटना (ज्ञान दशन शक्ति) होती है वह निश्चयनय से जीव है। अर्थात् यथासम्भव त्रय और भाव प्राण्य से जो जीता था, जीता है और जीवेगा वह जीव कहलाता है ॥३॥

उपयोगाधिकार का यत्न

उत्प्राणो दुपियप्यो, दमणं ग्राण च दमण चतुधा।

चतसु अचस्सु थोही, दमणमघ केवलं यं ॥४॥

भावार्थ—व्यवहारनय मे यथायोग्य आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन (संसारी या मुक्त को अथवा शुद्ध अणुद्ध ज्ञान दर्शन को विरोध विरज्ञा विना) जीव का लक्षण है । किन्तु शुद्ध निश्चयनय से 'शुद्धदर्शन' और 'शुद्ध ज्ञान' ही जीव का लक्षण कहा गया है ॥६॥



 अमूर्तिवाधिकार का विवरण

(वरण रस पंच गंधा, दो फामा अट्ट शिञ्चया जीवे ।
खो सति अमुत्ति तदो, व्यवहारा मुत्ति वधादो ॥७॥

वर्णा रसाः पञ्च गन्धौ, द्वौ स्पर्शा अष्टौ निञ्चयात् जीवे ।
नो सन्ति अमूर्ति तत, व्यवहारात् मूर्ति वधत ॥७॥

अवयव—(जीवे) जीव म (शिञ्चया) निश्चयनय से (पंच) पांच (वरण) वण (५च) पांच (रस) रस (दो) दो (गंधा) गंध (अट्ट) आठ (फामा) स्पर्श (खो) नदी (सति) होते हैं (तदो) इस कारण से (अमुत्ति) अमूर्तिक [अत्यि है, च = और] (वधादो) कर्मबंध सहित होने से (मुत्ति) मूर्तिक [अत्यि = है] ॥७॥

भावार्थ—जिसमें यथायोग्य पाच वर्ण, पाच रस, दो गंध और आठ स्पर्श होत हैं वह मूर्तिक कहलाता है । जीव में ये वर्णादि नहीं होते, इस कारण जीव निश्चयनय से अमूर्तिक है । किन्तु कर्मा तथा पुद्गल में ये वणादि २० गुण यथायोग्य होते हैं, इसलिये वे मूर्तिक हैं । कर्मा का जीव से सम्बन्ध है अतः कर्मबंध के होने से जीव को व्यवहारनय से मूर्तिक माना है ॥७॥

 कर्मा त्वाधिकार का विवरण 

पुद्गलमम्मादीण, कत्ता व्यवहारदो दु शिञ्चयदो ।
चेदणकम्माणादा, सुदणया सुदभावाणं ॥८॥

पुद्गलकमादीना, कर्त्ता व्यवहारतु निश्चयत ।
चेतनकमणाम् अत्मा, शुद्धायान् शुद्धभागानाम् ॥८॥

अवयव—(आदा) जात (व्यवहार) व्यवहार नय से (पुद्गलकमादीना) ज्ञानापरणादिक पुद्गलकम आदि का (निश्चयगुणयो) अशुद्ध निश्चयनय से (चदणकमाण) रागादिक भावकर्मों का (दु) और (शुद्धणया) शुद्ध निश्चयनय से (शुद्धभागण) पुद्गलकम और शुद्धज्ञान आदि चैतन्य भावों का (कसा) कसा [अस्ति = है] ॥८॥

भाषा—जीव व्यवहारनय म ज्ञानापरणादिक पुद्गलकर्मों का तथा शरीरादिक नोकम सा, अशुद्ध निश्चयनय से रागादिक भाव कर्मों का और शुद्ध निश्चयनय म शुद्धदर्शन (केवलज्ञान) शुद्धज्ञान (पैलज्ञान) आदि चैतन्यभावों का कसा है ॥८॥

भोक्तृत्वाधिकार का विवरण

व्यवहारा सुहृदृक्त्वं, पुद्गलकम्मफल पभुनदि ।
आदा शिचयणयतो, चैतन्यभावं तु आत्स्य ॥९॥

व्यवहारात् सुहृदृक्त्वं, पुद्गलकम्मफलं प्रभुनक्ति ।
आत्मा निश्चयनयत, चैतन्यभावं तु आत्मन ॥९॥

अवयव—(आदा) जीव (व्यवहारा) व्यवहारनय से (पुद्गलकम्मफल) पुद्गलकम कर्मों के फल (सुहृदृक्त्वं) सुख और दुःख को (पभुनक्ति) भोगता है [दु = और] (निश्चयगुणयो) निश्चयनय से (आत्स्य) आत्मा के (चैतन्यभावं) शुद्धदर्शन और शुद्धज्ञान रूप भावों को (तु) ही (पभुनक्ति) भोगता है ॥९॥

भाषा—जात व्यवहारनय म ज्ञानापरणादिक कर्मों के फलस्वरूप सुख और दुःख को भोगता है और निश्चय

भावाथ—व्यवहारनय से यथायोग्य आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन (संसारी या मुक्त को अथवा शुद्ध अणुद्वय ज्ञान दर्शन की विशेष विवक्षा विना) जीव का लक्षण है । किन्तु शुद्ध निश्चयनय से 'शुद्धदर्शन' और 'शुद्ध मात' ही जीव का लक्षण कहा गया है ॥६॥

अमूर्ति त्वाधिकार का विवरण

वर्ण रस पच गधा, दो फासा अष्ट शिच्यया जीवे ।
शो सति अमुत्ति तदो, व्यवहारा मुत्ति वधादो ॥७॥

वर्णा रसाः पच गन्धो, द्वौ स्पर्शा अष्टौ निश्चयात् जीवे ।

ते सन्ति अमूर्ति तत, व्यवहारात् मूर्ति वधात् ॥७॥

अवयवार्थ—(जीवे) जीव में (शिच्यया) निश्चयनय से (पच) पांच (वर्ण) वर्ण (पच) पाच (रस) रस (दो) दो (गधा) गध (अष्ट) आठ (फासा) स्पर्श (शो) नहीं (सति) होते हैं (तदो) इस कारण से (अमुत्ति) अमूर्तिक [अत्यि है, च = और] (वधादो) कर्मवध सहित होने से (मुत्ति) मूर्तिक [अत्यि = है] ॥७॥

भावाथ—जिसमें यथायोग्य पाच वर्ण, पाच रस, दो गध और आठ स्पर्श होते हैं वह मूर्तिक कहलाता है । जीव में ये वखादि नहीं होते, इस कारण जीव निश्चयनय से अमूर्तिक है । किन्तु कर्मा तथा पुद्गल म ये वर्णादि २० गुण यथायोग्य होते हैं, इसलिये वे मूर्तिक हैं । कर्मा का जीव से सम्बन्ध है, अतः कर्मवन्ध के होने से जीव को व्यवहारनय से मूर्तिक माना है ॥७॥

कृत् त्वाधिकार का विवरण

पुग्गलकम्मादीणां, कत्ता व्यवहारदो दु शिच्ययोदो ।
चेदण कम्माणादा, सुदणया सुदभारणां ॥८॥

पद्मत्रयमोदीना, कर्मा ध्यारन नु निररन ।

चननकमणाम् अत्मा, शुदाशान् शुद्धम गायम् ॥८॥

अवयव—(आत्मा) त्रय (धरहरा) ध्यारन नय मे (पुगलकम्मणीण) ज्ञानावरणात्तिक पुद्गलकम ज्ञात्तिका (गिण्यग्यवदी) अशुद्ध निरचयनय से (चदगुक्कमाणं) रागादिक भावकर्मो वा (दु) और (शुद्धग्या) शुद्ध निरचयनय मे (शुद्धभागणं) गद्दशन और गद्दशन आत्ति चैत य भावो वा (कत्ता) कता [अन्ति = हे] ॥८॥

भाषाथ—त्रिय ध्यारनय म ज्ञानावरणात्तिक पुद्गल
कर्मा का मया शरीरात्तिक मोक्षम का, अशुद्ध निरचय म
रागादिक भाव कर्मा का और शुद्ध निरचय म शुद्धदर्शा
(पेवलक्षण) शुद्धज्ञान (पेवलक्षण) आदि त्रियभावा
का कता हे ॥८॥

भोक्तृत्वाधिकार का निररण

धरहरा शुद्धकर्त, पुगलकम्मण्णल पभूनदि ।

आदा गिण्यग्यवत्ता, चण्णमार गु आदम्य ॥९॥

धरहरान् सुगदुगं, पद्मत्रयमोदीना प्रमुत्त ।

आत्मा निरचयनय, चननमार्थं रावु अत्मेन ॥९॥

अवयव—(आदा) त्रिय (धरहरा) ध्यारनय म (पुगल कम्मणल) पुद्गलकमय कर्मो क पल (शुद्धवत्त) सुग और दुग को (पमं जेदि) भोगता हे [दु = और] (गिण्यग्यवदी) निरचयनय स (आदम्य) आत्मा क (चण्णमारं) गद्दशन और शुद्धज्ञान रूप भावो को (गु) ही (पभूनदि) भोगता है ॥९॥

भाषाथ—त्रिय धरहरानय म ज्ञानावरणात्तिक कर्मा के पलम्बक्य सुग और दुग को भोगता है और निरचयनय से

आत्मा के शुद्धदर्शन (केवलदर्शन) तथा शुद्धज्ञान (केवलज्ञान) रूप भावों को ही भोगता है ॥ ६ ॥

स्वदेहपरिमाणत्व अधिकार का वणन

अणुगुरु—देह—प्रमाणो, उपसंहारप्पमप्पदो चेदा ।

असमुद्दहदो व्यवहारा, णिच्चयण्यदो असंसखदेशो वा ॥ १० ॥

अणुगुरुदेहप्रमाण उपसंहारप्रसर्पाम्या चिदात्मा ।
असमुद्घातात् व्यवहारात्, निश्चयनयत असंसख्यदेशो वा ॥ १० ॥

अन्वयाथ—(चेदा) जीव (व्यवहारा) व्यवहारनय से (उपसंहार-प्पसप्पदो) संकोच विस्तार गुण के कारण (असमुद्दहदो) समुद्घात अवस्था के अतिरिक्त शेष सब अवस्थायों में (अणुगुरुदेहप्रमाणो) नामकर्म के द्वारा प्राप्त छोटे या बड़े शरीर के बराबर (वा) और (णिच्चयण्यदो) निश्चयनय से (असंसखदेशो) असंख्यात प्रदेश वाले लोकाकाश के बराबर [होदि = है ॥ १० ॥

भावाथ—जीव व्यवहारनय से समुद्धानों के मित्राय शेष हालतों में शरीरनामकर्म के उदय से होने वाले संकोच विस्तार गुण के कारण घट (घटा) आदि में स्थित लीपक की तरह अपने छोटे बड़े शरीर के बराबर है। और निश्चयनय से असंख्यात प्रदेश वाले लोकाकाश के बराबर है ॥ १० ॥

ससारित्व अधिकार का वणन

पुढविजलतेउवाऊ, वणण्फदी निवहवापरइदी ।

विगतिगचदुपचक्खा, तसजीवा होंति सखादी ॥ ११ ॥

पृथिवीजलतेजोवायु-यनस्पतय विविधस्थावरैकेन्द्रिया ।

द्विक्रिकचतुपचाक्षा, प्रसजावा भवन्ति शङ्खादय ॥ ११ ॥

अवयार्थ—[य = जो] (पुढविजलतेउवाऊवणण्फदी) पृथ्वी

कायिक जलवायिक, अग्निवायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक (पवित्रवाकरोईदी) अनेक प्रकार के एकेन्द्रिय स्थावर (हाति) हैं [च = और] (सन्धारी) सप्त आदिक (विगतिगवदुपचवत्ता) द्वीन्द्रिय श्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय (प्रसमीया) प्रसमीय (होति) हैं [त = वे] (सन्धे) सप्त (सप्तारी) सप्तारी (विप्लेया) जानना चाहिये ॥११॥

माथार्थ—संसारी जीव के मुख्य दो भेद हैं। प्रम और स्थावर। उनमें प्राक्वायिक, जलवायिक, अग्निवायिक; वायु कायिक और वनस्पतिकायिक ये पाच एकेन्द्रिय 'स्थायर' जीव हैं। और सन्ध आदि द्वीन्द्रिय, चित्ती आदि श्रीन्द्रिय, भीरा आदि चतुरिन्द्रिय तथा मनुष्य आदि पंचेन्द्रिय से चार 'प्रस' जीव हैं। ये सब जीव 'संसारी' कहलान हैं ॥ ११ ॥

चौदह जीवसमास (जीवों के संदिन भेद) — *gmp*

समया अमया खेया, पंचेन्द्रिय गिम्भया परे मव्ये ।

आदरमुहमेईदी, सव्ये पञ्चत इदरा य ॥१२॥

समनरस्य अमनरस्य, सया पञ्चेन्द्रिया निमनरस्य परे सव्ये ।

आदरमुहमेईदी, सव्ये पर्यासा इदरे य ॥ १२ ॥

अव्याय—(पंचेन्द्रिय) पञ्चेन्द्रिय जीव (समया) संही (अमया) असही (परे सव्ये) दूसरे सब एकेन्द्रिय आदिक चारों (गिम्भया) अरुही (खेया) जानना चाहिये (य) और (एईदी) एकेन्द्रिय जीव (आदरमुहमा) आदर और सुद्धम दो प्रकार (होति = हैं) तथा (सव्ये) य सब (पञ्चत) पर्याप्तक (य) और (इदरा) अर्याप्तक (होति) होते हैं। [ते = वे] (सव्ये) सब (संसारी) संसारी [विप्लेया = जानना चाहिये] ॥१२॥

अथवाथ—(तद) तथा (मेगरी) संमती जीव (अमुद्रगुणा)
 हारनय मं (चउदमर्ग) खीरर धाह (मंगलगुणगणदि)
 ग्राहो खीर गुणस्थानों की अघा (चउदस) गीह-खीह प्रकार
 (खनि) होते हैं (व) खीर (मुद्रगुण विचयनय मं (गवे) मय
 मय (गुदा) गुद (दु) हा (विरगवा) जातना आन्वि ॥१॥

भाषाथ—संगी जीव स्यहारनय मं म गलाहो खीर
 रम्यानों की अपेक्षा म भा खीरह खीरह प्रकार क होत हैं ।
 गु विराय म मय भाय गुद (निविकार—भेदरहित—
 क स्वभाव—एक एक) ही हैं ॥१३॥

विद्वन् खीर उर्ध्वमनय अधिकार का वपन

गिक्वर्म्मा अट्टगुणा, सिग्गा चरमदहना मिद्धा ।

लायग्गटिणा गिन्वा, उप्पादवयहि संजुचा ॥१४॥

गिर्याल अग्गुणा, सिग्गिदूना चरमहेत मिद्धा ।

लाक्कापरियना निचा उत्पादवय्याग्यो मयुत्त ॥१५॥

अथवाथ—[व = जो] (गिक्वर्मा) हानावर्णादि आठ
 चरमरहित (अट्टगुणा) मय्यक्य आदि आठ गुण छदित (चरमदेहदो)
 आ तम शरीर उ (सिग्गा) पुद्ग कम [होत्रि = होत्र हैं त = थ]
 (मिद्धा) मिद्ध [होत्रि = हैं, व = खीर थ मिद्ध] (गिघा) विनाय
 ररित [व = खीर] (लायग्गटिदा) खीर क अमनाय मं गिघ
 [होत्रि = होत्र हैं] ॥१४॥

भाषाथ—ज्ञानावर्ण आदि आठ कम ररित, सम्यक्त्व
 आदि आठ गुण महित, दोड़ हू । आ तम शरीर से गुद्र कम
 आत्मप्रश याभा जाव मिद्ध पहलावा है । यह सिद्धत्व
 अधिकार है ।

य मिद्ध अरने उर्ध्वमना स्वभाव म शोक थं अथभाग

अथयाव—(जड़) जैसे (तोय) जल (गणपरिणयाण) गमन करती हुई (मच्छाया) मछलियों को (गमणसह्यारी) चलने में सहायक [अत्रिय = हे] (तद्) उसी प्रकार [जो = जो] (गणपरिणयाण) चलते हुए (पुद्गलजीवाण) पुद्गल और जीवों को (गमणसह्यारी) चलने में सहायक । शोदि = होता है सो = वह] (धम्मो) धमद्रव्य [खेशो = जाता चाहिय] किन्तु (सो) वह धमद्रव्य अच्छता) ठहर हुए जीवों और पुद्गलों को (खेष) नहीं (खेइ) चलाता है ॥१८॥

२ भाषा—जीव और पुद्गल द्रव्य ही हिलते चलते हैं, शपद्रव्यें नहीं । जैसे पानी चलती हुई मछली को चलने में सहायता करता है उसी प्रकार जो द्रव्य चलते हुए जीव और पुद्गल को चलने में सहायता करता है वह धमद्रव्य कहलाता है । किन्तु जैसे पानी मछली को चलने के हेतु प्रेरणा नहीं करता, उसी प्रकार यह धमद्रव्य भी ठहरे हुए जीव और पुद्गल को जड़दस्ती नहीं चलाता ॥१७॥

टिप्पणी—यदि धमद्रव्य को जीव और पुद्गलों में गमन करने में उदासीन कारण न मानकर प्रत्येक कारण माना जाय तो यह बाधा उपस्थित होगी कि धमद्रव्य और अधर्मद्रव्य सब एक सदा लोक में पाये जाते हैं इससे जब धमद्रव्य चलने में सहायक होगा सब अधमद्रव्य चलने में बाधक होगा तथा जब अधर्मद्रव्य ठहरने में सहायक होगा तब धमद्रव्य ठहरने में बाधक होगा । इससे निश्चय है कि दोनों द्रव्य उदासीन रूप से ही सहायक हैं ॥१७॥

धर्म और अधर्म द्रव्य से यहाँ पुण्य और पाप नहीं समझना । किन्तु पण्डितों के अतर्गत द्रव्यें जानना । और अथवा धर्म या अधर्म का अर्थ शुभाशुभ कर्म का फल पुण्य और जानना ।

अधमद्रव्य का स्वरूप

ठाणजुदाण अधम्मो, पुग्गलजीराण ठाणसहयारी ।

छाया जह पहियारु, गच्छता गेय मो धरु ॥१८॥

स्थानयुतानामधम पुद्गलजीवानो स्वानमहारी ।

छाया यथा पविकरणा, गच्छतो नैव स धरत ॥१८॥

अवयव—(जह) जैसे (छाया) छाया (ठाणजुदाण)
 टहरते हुए (पहियारु) पक्षि जनों को (ठाणसहयारी) टहरने में
 सहायक [होदि = होदि ह तह = उसी प्रकार, मो = जो] (ठाण
 जुदाण) टहरते हुए (पुग्गलजीराण) पुद्गल और जीवों को
 (ठाणसहयारी) टहरने में सहायक [होदि = होता है सो = वह]
 (अधम्मो) अधमद्रव्य [रोथा = जानना चाहिये] (मो वह अधम
 द्रव्य (गच्छतो) गमन करते हुए जीव और पुद्गलों को (रोव)
 नहीं (धरत टहरता है ।

भाषा—जैसे यदि सुमाप्ति टहरना चाह तो वृक्ष की
 छाया उसके टहरने में सहायता करती है, किन्तु चलना चाह
 तो उसे प्रेरणा कर नहीं टहराती, उसी प्रकार जो जीव या
 पुद्गल टहरने हैं, उन्हें टहरने में जो सहायता करता है
 (प्रेरणा नहीं करता) वह अधमद्रव्य कहलाता है ॥ १८ ॥

आकाशद्रव्य का लक्षण

अवगागणानोर्ग, जीरादीण वियाण आयाम ।

जेण लोमागामं, अलागागासमिदि दुग्धिं ॥१९॥

अवकाशदानयोग्य, जीरादीना विजानीहि आकाशम् ।

जैन लोमागामं, अलागागासमिति द्विगुणम् ॥१९॥

अवयवार्थ—(जीवादीण) जीवादि छुट्टों द्रव्यों के अणुगत दायजोग्य) अवकाश देने म समथ द्रव्य को (जेएण) भगवान् जितनेद्र द्वारा कहा हुआ (आयास) आकाश (त्रिधाण जानना चाहिये [त = यह आकाश] (लोकागास) लोकाकाश [च = और] (अल्लोकागास) अलोकाकाश (इदि) इस प्रकार (तुमिर्द) दो प्रकार का [अत्थि = है] ॥१६॥

भावार्थ—जो समस्त द्रव्यों को ठहरन के लिये म्वा देता है उसे आकाश द्रव्य कहते हैं। उम आकाश द्रव्य के लोकाकाश और अलोकाकाश ये दो भेद हैं ॥१६॥

लोकाकाश और अलोकाकाश का स्वरूप

धम्माधम्मा कालो, पुग्गलजीवा य मंति जावदिये ।

आयासे सो लोगो, [ततो परदो अलोगुत्तो] ॥२०॥

धर्माधर्मा कालः, पुद्गलजीवाश्च सन्ति यावत्ते ।

आकाशे स लोक, तत रत अनोक उक्त ॥२०॥

अवयवार्थ—(जावदिये) जितने (आयासे) आकाश म (धम्मा धम्मा, धमद्रव्य और अधर्मद्रव्य (कालो) कालद्रव्य [य = और] (पुग्गलजीवा) पुद्गलद्रव्य और जीवद्रव्य (सति) रहते हैं (सो) वह (लोगो) लोकाकाश [अत्थि = है] (ततो) उससे (परदो) बाहर (अलोगुत्तो) अलोकाकाश कहा गया है ॥२०॥

भावार्थ—जिममें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पाच द्रव्य रहते (दये जा) हैं, आकाश व उतने भाग को लोकाकाश (लोक) कहते हैं। उसके बाद ये ५ द्रव्य नहीं देरे जाते, केवल अणुत आकाश है उस अलोकाकाश (अलोक) कहते हैं ॥२०॥

शंका — आकाश के अनन्त भागों में स एक भाग प्रमाण असख्यात प्रदेशों के धारक लोकाकाश (लोक) में अनन्त जीव, उनसे भी अनन्तगुणे पुद्गल लोकाकाशप्रमाण असख्यात कालाणु तथा लोकाकाश माय धम अधर्म द्रव्य अवकाश (स्थान कैसे पाते हैं ?

उत्तर — जैसे एक दीपक के प्रकाश में अथ अनेक दीपकों का प्रकाश स्थान पाता है उस तरह । अथवा जैसे एक गूठरस विरोध से भरे हुये शीश के बर्तन में बहुतसा सुग्गुण अवकाश पाता है उस तरह । अथवा जैसे भरम से भरे हुये घट (घड़ा) में मुह्यां और ऊटनी का दूध आदि समा जाते हैं उसी प्रकार त्रिष्टिष्ट अरणाहन शक्ति क वश से असख्यातप्रदेश वाले लोक में पूर्वोक्त द्रव्यों का रहना विरोध को प्राप्त नहीं होता ।

जैसे मिट्ट निच प्रदेशों में रहते हैं उसी प्रकार निचवनय से यत्रपि सभी द्रव्य अपने अपने प्रदेशों में स्थित रहते हैं तथापि उपवरित असद्रूमत-पवहारनय से सब द्रव्य लोकाकाश में रहते हैं ।

शंका — धर्म, अधम और आकाश ये तीनों द्रव्य सम्पूर्ण लोकाकाश में पात हैं फिर एक दूसरे को क्यों नहीं रोकते ?

उत्तर — ये तीनों द्रव्य लोकाकाश में अनादिकाल से रहते हैं । इनके प्रदेश 'अमूर्तिक होने से' एक दूसरे के प्रदेशों को नहीं रोकते । जैसे—जल रास और बालु आदि मूर्तिक पदार्थों में विरोध नहीं होता, उसी प्रकार अनादिकाल से सम्बन्ध रखने वाले अमूर्तिक द्रव्यों में भी विरोध नहीं आता ।

— कालद्रव्य का लक्षण

दृश्यपरिवद्वृत्तो, जो सो शलो हवेइ वरहारो ।
परिणामादीलरसा, वद्वृणालरसो, य परमद्वो ॥२१॥

अस्तिकाय का लक्षण तथा अस्तिकायनाम का कारण

मनि जदो तेणेदे, अत्थीति भणति जिणपरा जह्मा ।

काया इव बहुदेसा, तद्वा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥

सन्ति यतस्तेनेते, अम्नीति भणन्ति जिणपरा वस्मात् ।

काया इव बहुदेशा, तस्मात्कायाश्चास्तिकायाश्च ॥२४॥

अन्वयार्थ—(जदो) क्योंकि (एदे) य जीव आदि द्रव्य (सति) है (ते) इमलिय [उत्तरो] (जिणपरा) भगवन्जिनेद्र देव (अत्थी त) अस्ति ऐसा (भणति) कहते हैं । (य) और (जह्मा) जिस कारण के (काया इव) शरीर के समान (बहुदेसा) बहुत प्रदेश वाले [ह्यंति = होते हैं] (तद्वा) इस कारण (काया) काय (य) और [मिलित्ता = मिल कर] (अत्थिकाया) अस्तिकाय [उत्ता = बड़े गय हैं] ॥२४॥

भावार्थ—ये पाचों द्रव्य सदा विद्यमान रहते हैं इसलिये इन्हें अस्ति (विद्यमान) कहते हैं । और जैसे काय शरीर बहु प्रदेशी है उसी प्रकार ये धर्म आदि द्रव्य भी बहु-प्रदेशी हैं, इस लिये इन्हें काय कहते हैं । हम प्रसार पाचों द्रव्यों की अस्तिकाय संज्ञा होती है । 'अस्ति विद्यत काय बहुप्रदेशात्सर्वत्रासी अस्ति काय । कालद्रव्य अस्ति (विद्यमान) तो है किन्तु वह एकप्रदेशी होने से काय नहीं, इससे वह अस्तिकाय नहीं है ॥२४॥

द्रव्यों के प्रदेश व काल के अस्तिकायत्व का निषेध

हाति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणत आयासे ।

मुत्ते त्तिविह पदशा, कालस्मगो ण तेण सो कायो ॥२५॥

भवन्त्यसख्या जीव, धर्माधर्मयो अन ता आकाश ।

मूर्ते त्रिविधा प्रदेशा, कालस्यैको ऽतो स एव ॥२५॥

अन्वयार्थ—(जीव) एक जीव ग (धम्माधम्मे) धम और
 प्रथम द्रव्य में (असत्त्वा) असत्त्वान् (आयासे) आकाश द्रव्य म
 (अणुता, अनन्त [य = और] (मुचै) पुद्गल द्रव्य में (तिरिह)
 सख्यात असत्त्वात और अनन्त (पदरा) प्रदेश (शक्ति) होते हैं ।
 (कालस्य) काल द्रव्य क (एगो) एक [प्रदेशो = प्रदेश, होदि =
 होता है] (तण इसलिये (सो) यह कालद्रव्य (काथो = कायान्)
 (ग) नहीं [आ य = है] ॥२५॥

भाषा—एक जीव समस्त लोकाकारा म फैल सयता है,
 लोकाकारा के असत्त्वात प्रदेश होने हैं । इसस जीव असत्त्वात
 प्रदेशी है । धम तथा अयम द्रव्य भी समस्त लोकाकारा म तिल
 म तिल के सभा । व्याप्त हैं, इसस ये भी असत्त्वात प्रदेशी हैं ।
 आकारा के अनन्त प्रदेश हैं, क्योंकि यह लोकाकारा के बाहर भी
 है और उसकी कोई सीमा नहीं । पुद्गल द्रव्य के संग्यात,
 असत्त्वात और अनन्त प्रदेश होते हैं । इसीलिये ये पाचों धु
 प्रदेशी होने में 'अस्ति काय' हैं । किन्तु फाल क अणु एक-एक
 अलग रहते हैं, य मिलकर स्व-धरूप नहीं होने, इस कारण यह
 एक-प्रदेशी है, कायान् (अस्तिकाय) नहीं ॥२५॥

पुद्गल प परमाणु के अस्तिकाय पना

एयप्रदेशो वि अणु, शाणालंघ—एयप्रदेशो होदि ।

बहुदशा उपयात्, तेण य काओ भणति सच्चण्ह ॥२६॥

एकप्रदेश अपि अणु, नानाधधप्रदेशत भवति ।

बहुदशा उपचारात्, ता च काय भणन्ति सक्का ॥२६॥

अन्वयार्थ—(एयप्रदेशो) एक प्रदेश वाला (वि) भी (अणु)
 पुद्गल का परमाणु (शाणालंघप्रदेशो) नानास्वरूपों का कारण
 होने स (बहुदेशो) बहुप्रदेशी (होदि) होता है (य) और (

इसलिये (संघट्ट) सर्वज्ञदेव [त=उभे] (अवारा) व्यवहारनय से (काथो) कायवार (भणति) कहत है ॥२६॥

भावार्थ—पुद्गल के परमाणु का दृगरा दिस्ना नहीं हो सकता, इसलिये वह स्वयं तो बहु-देशी (कायवान या अस्ति काय) नहीं है, किन्तु अनेक प्रकार के पुद्गलस्पर्श का कारण है इसलिये बहु-देशी स्पर्श का कारण होने में व्यवहार से (कारण में काय के उपचार से) उसे कायवान् (अस्तिकाय) कहत है ॥२६॥

प्रदेश का लक्षण और शक्ति

जावदियं आयाम, अविभागी-पुग्गलाणुदृढ ।

त तु पदेमं जाणे, सञ्चाणुद्व्याणदाणरिह ॥२७॥

यावन्मात्रम् आकाशं, अविभागीपुद्गलाणुदृढम् ।

त तनु प्रदेशं जातीहि, सर्वाणुरवापदानाहम् ॥२७॥

अन्वयाथ—(जावदिय) जितना (आयाम) आकाश (अविभागीपुग्गलाणुदृढ) पुद्गल के सबसे छोटे परमाणु से रकने वाला [अत्यि=है] (त) उसको (तु) निरचय से (सञ्चाणुद्व्याणदाणरिह) सर्वपरमाणुओं को स्थान देने में समर्थ (पदेस) प्रदेश (जाणे) जानना चाहिये ॥२७॥

भावार्थ—आकाश के जितने क्षेत्र में पुद्गल का-मयसे छोटा टुकड़ा (परमाणु) रहता है उतने क्षेत्र को प्रदेश कहा है। इस प्रदेश में धम और अधम के एक-एक प्रदेश, काल का अणु और पुद्गल के संख्यात, असंख्यात और अनन्त अणु भी लोह में आग के समान एक क्षेत्रायगाही होकर समा जाते हैं। इसलिये प्रदेश को सब द्रव्या के अणुओं को स्थान देने योग्य कहा है ॥२७॥

अथ द्वितीय अधिहार



सात पदार्थों का करने की सहायण प्रतिज्ञा

आसन्नबंधणमर—गिञ्जरमाग्ना मपुण्णपावा वे ।

जीवाजीव-विमता, तानपि समामा प्रभणामो ॥२८॥

आसन्नबंधणमर—गिञ्जरमाग्ना मपुण्णपावा वे ।

जीवाजीवविमता, तानपि समामा प्रभणामो ॥२८॥

अन्वय—(४) जी (जीवाजीवविमता) जीव और अजीव के विषय भेद (मपुण्णपावा) पुण्य और पाप सहित (आसन्नबंधण संवत्सिद्धमोक्षता , आसन्न, बंध मंत्र विज्ञान आरमोक्ष [संति = हैं] (तैयि) उनको भी (समास्य) सत्त्व से (प्रभणामो) करता है ॥२८॥

भाषा—पुण्य पाप, आसन्न, पाप, संवर, निचरा और मोक्ष ये सात पदार्थ भा जीव और अजीव के दो विरोध भेद हैं । अथात् जीव और अजीव द्रव्य म द्रव्य द्रव्य, मातों सत्त्व और नी पदार्थ शासक हैं । इसलिये उनका भी मंत्र से यहाँ पण्य किया जाता है ॥२८॥

विशय—जीव, संवर निचरा और मोक्ष से ४ पदार्थ तो उपादेय हैं, रूप अजीव आसन्न ४५ पुण्य और पाप से ५ पदार्थ देय हैं । मोक्षमाग में इन नौ पदार्थों का जानना आवश्यक है । क्योंकि इनके अदान से ही मोक्षमाग की प्राप्ति होती है ।

भाषासत्र और द्रव्यासत्र का लक्षण १ २ ३

आमत्रदि जेण कम्मं, परिणामिण्यण्यो स रिण्यो ।

मानास्रं निणुत्तो, कम्मसास्रं परो हांदि ।

भावबंध और द्रव्यबंध का लक्षण

वज्रभृदि कर्म जेण दु, चैशभावेण भावबन्धो मो ।

कम्मादपदेसाण, अण्णोणपवेसण इदरो ॥३२॥

बध्यते कम येन तु चेतनभावा भावबन्ध य ।

कर्मात्मप्रदेशाना-मन्योऽन्यप्रवेशन इतर ॥३२॥

अत्रार्थ— जेण जिस (चैशभावेण) आत्मा के परिणाम से (कर्म) कम (वज्रभृदि) बंधता है (सो) वह परिणाम (भावबंधी) भावबंध [अतिय = है, दु = और] (कम्मादपदेसाण) कम और आत्मा के प्रदेशों का (अण्णोणपवेसण) परस्पर एकमेक होकर मिल जाना (इदरो) दूसरा द्रव्यबंध [अतिय = है] ॥३२॥

भावाध—आत्मा के जिस मध्यात्त या रागादि परिणाम से आत्मा में कर्म का बंध होता है, यह परिणाम भावबंध कहलाता है। और भावबंध के निमित्त से फमरूप पुद्गल परमाणुओं का आत्मा के प्रदेशों में दूध और पानी के समान परस्पर एकमेक होकर मिल जाना (एक चैत्रा गगाही हो जाना) द्रव्यबंध कहलाता है ॥३२॥

बंध के भेद और उनके कारण

ॐ

पयडिडिदिअणुभाग-पदमभेदा दु चदुविधो बधो ।

जोगा पयडिपदेमा, ठिदिअणुभागा कमायदो होंति ॥३३॥

प्रकृतिस्थित्यनुमाग पदमभेदात् नु चदुविधो बन्ध ।

यागात् प्रकृतिप्रदेशो, स्थित्यनुभागो उपायत भवत ॥३३॥

अत्रार्थ—(बधो) बंध (पयडिडिदिअणुभागपदेसभेदा) प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुमागबंध और प्रदेशबंधके भेदसे (चदुविधो) चार प्रकार [अतिय = है, तत्थ = उनमें] (पयडिपदेसा) प्रकृतिबंध और

प्रदेशवध (योग) योम से (हु) और (ठिदिशुमागा) स्थितिवध और अनुभागवध (कसायदी) कपाय से (होति) होते हैं ॥३३॥

भाषाथ—१ प्रकृतिवध, २ स्थितिवध, ३ अनुभागवध और ४ प्रदेशवध इम प्रकार वध ५ प्रकार का है । उनमें प्रकृति वध और प्रदेशवध तो योग में होते हैं तथा स्थितिवध और अनुभागवध कपाय से होते हैं ॥३३॥

भावसंवर और द्रव्यसंवर का लक्षण

चेदणपरिणामो जो मम्मम्मामवणिरोधणे हेऊ ।

सो भावसंवरो खलु, दव्यामवराहण अणणो ॥३४॥

चेदनपरिणाम य, कमण आमवनिरोधने हेतु ।

स भावसंवर खलु, द्रव्यासवरोधने अन्य ॥३४॥

अन्यवार्थ—(जो) जो (चेदणपरिणामो) आत्मा का परिणाम (कम्ममस) कम के (आसवणिरोधणे) आसव के रोकने में (हेऊ) कारण [अधि=है] (सो) वह परिणाम (खलु) निश्चय से (भावसवरो) भावसंवर [अधि=है] [च=और] (जो) जो (दव्यासवरोहणे) द्रव्यासव के रोकने में (हेऊ) कारण [अधि=है] (सो) वह (अणणो) दूसरा द्रव्यसंवर [अधि=है] ॥३४॥

भाषाथ—आत्मा के जिन परिणाम में कम का आना बन्द होता है उस परिणाम को भावसंवर कहते हैं । और जो द्रव्यासव (द्रव्यकर्म का आना) रोकता है उसे द्रव्यसंवर कहते हैं ॥३४॥

भावसंवर के भेद

वदसमिदीगुत्तीओ, धम्माणुपिहा परीसहजओ य ।

चारित्र

भावसंवरविसेसा

व्रतसमितिगुणय, धर्मानुप्रज्ञा परीपहजदक्ष ।

चारित्र बहुभेदं, ज्ञातव्या भावसवरविशेषा ॥ ३५ ॥

अवयवार्थ—(वदसमिदीगुचीश्रो) व्रत, समिति गुति (धर्मा गुपिहा) धर्म, अनुप्रेक्षा (परीपहजश्रो) परीपहजय (य) और (बहुमेय) बहुत प्रकार (चारित्र) चारित्र [एदे = ये सत्र] (भावसवरविशेषा) भावसवर के भेद (ज्ञायव्या) जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

भावार्थ—४ व्रत, ५ समिति, ३ गुति १० धर्म, १२ अनुप्रेक्षा, २२ पक्षोपहजय और अनक प्रकार का चारित्र ये सत्र भावसवर के भेद हैं । अथात् ये सत्र कर्मा का आत्मन रोकन म कारण हैं ॥ ३५ ॥

शका—आसन और बध में मिथ्याय और अविरति आदि कारण समाप्त हैं, फिर इनमें क्या भद है ? उत्तर प्रथमक्षण में जो कर्मत्कणों का आगमन होता है वह तो आसन है और कर्मत्कणों का आगमन के पाछे द्वितीय आदि क्षण में उनका आमा में स्थित होना उच है । यही इन दोनों में अंतर है ।

ॐ श्रीगणेशाय नमः

निजरा का लक्षण और भद

—जहकालेण तपेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गल जेण ।

भावेण सडडि णेया, तस्सडण चेत्ति णिज्जरा दुग्गिहा ॥ ३६ ॥

यथाराल तपमा ३, मुत्तरसं कम्मपुग्गल येन ।

भावेन सडडि णेया, तस्मडन चेत्ति निजरा द्विविधा ॥ ३६ ॥

अवयवार्थ—(जहकालेण) कर्मों की स्थिति पूरा होने से (भुत्तरसं जिसका फल भोगा जा चुका है ऐसा (कम्मपुग्गल) पुद्गलमयकर्म (जेण) जिस (भावेण) परिणाम से (सडडि) छूटता है [यही परिणाम सनिपाक भावनिजरा है] (य) और (तपेण) तप के द्वारा (जय भावेण कम्मपुग्गल सडडि) आत्मा के जिस परिणाम से

कर्म छूटना है यही परिणाम अविपाकभावनिजरा है, तथा] [वह
 कालेण, य तथण = स्थिति पूरा होने से या तप से] (तरसटयां)
 ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों का छूटना [सन्निपाक और अविपाक द्रव्य
 निजरा है (इदि) इस प्रकार (विजरा) निजरा (दुविहा) दो प्रकार
 (सया) जानना चाहिये ॥२६॥

भावाथ—निजरा के दो भेद हैं । १ स्वयं और २ भाव ।
 आत्मा के जिन परिणामों में कम १६दश छूटते हैं उन परिणामों
 को भावनिजरा कहते हैं । तथा ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्मों का
 एकदश छूटना द्रव्यनिजरा है ।

ये दोनों प्रकार की स्वयं और भाव निजरा भी सर्वदक
 (अकाम) तथा आवसाव (सकाम) निजरा के भेद से दो
 प्रकार हैं । कर्मों की स्थिति पूरा होने पर अध्यात्मात्मा
 आत्मा में कर्मों का एकदश छूटना अविपाक निजरा कहते
 हैं । तथा तपरचरण में कर्मों का १६दश छूटना
 निजरा कहलाती है ॥३६॥

मोक्ष का स्वरूप और उसके

मन्वस्म कम्मणो जो, मयहद् अप्पणी ह्

खिथा म भावमोक्खो, द्रव्यविमासो य

सर्वस्य फलण य, सुवहतु अत्मन इ

सुय म भावमोक्षः, द्रव्यविमासः,

अन्वयाथ—(जो) जो (अप्पणी)

परिणाम (सवस) समस्त (कम्मणो)

होन का कारण [अथि = है] (य)

(भावमोक्खो) भावमोक्ष (खिथो)

(कम्मपुपभावो) ज्ञानावरणादि द्रव्य

मोक्खो) द्रव्यमोक्ष [अथि = है]

भाषा—मोक्ष के दो भेद हैं। द्रव्यमोक्ष और भावमोक्ष। आत्मा का जो परिणाम कर्मा के मर्यादा क्षय (नाश) होने से कारण होता है। उस परिणाम को भावमोक्ष कहते हैं। और शाश्वतरक्षण आठ द्रव्यकर्मा का मर्यादा क्षय (अभाव) हो जाना द्रव्यमोक्ष है। यह द्रव्यमोक्ष अयोगसुख्यायतना जीव के अन्त्य समय में होता है ॥३७॥

पुण्य और पाप पर्याय भाषण

मुदश्चमुदभावजुता, पुण्यं पापं हवति सलु जीवा ।

सादं मुदाउ शाम, गोदं पुण्यं पराणि पाप च ॥३८॥

शुभाशुभाद्युक्ता, पुण्यं पापं भवति सलु जीवा ।

सातं शुभायु नाम, गोत्र पुण्यं, पराणि पाप च ॥३९॥

अवयव—(मुदश्चमुदभावजुता) अर्थात् और छोटे परिणामों सहित (जीवा) जीव (सलु) निश्चय से (पुण्यं) पुण्य रूप [च = और] (पापं) पापरूप (हवति) होते हैं [च = और] (सादं) सादा वेदनीय (मुदाउ) शुभ आयु (शाम) शुभनाम (च) और (गोदं) उच्चगोत्र (पुण्यं) पुण्यरूप (हवति) है (पराणि) शेष सब कर्म (पापं) पापरूप [हवति = है] ॥३८॥

भाषा—पुण्य और पाप के भी दो दो भेद हैं। भावपुण्य और द्रव्यपुण्य। भावपाप और द्रव्यपाप। उनमें जीव के शुभभागों को भावपुण्य और अशुभभागों को भावपाप कहते हैं। तथा कर्म की पुण्य प्रवृत्तियों को द्रव्यपुण्य और पाप प्रवृत्तियों को द्रव्यपाप कहते हैं। सादावेदनीय, शुभायु, शुभनाम, उच्चगोत्र ये पुण्य प्रवृत्तियाँ हैं तथा अशुभभागों अशुभनाम, नीचगोत्र तथा घातिया कर्म कुल हूँ पाप प्रवृत्तियाँ हैं ॥३८॥

॥ इति द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः ॥

* अथ तृतीयोऽधिकारः *

व्यवहार और निश्चय मोक्षमाग का लक्षण

सम्महंसगुणारा, चरण मोक्षस्वप्न कारणं जाये ।

व्यवहार, निश्चयदा, तत्त्वियमदयो शिओ अर्पा ॥३६॥

सम्यग्दर्शनं ज्ञानं, चरण मोक्षस्य कारणं जानीहि ।

व्यवहारान् निश्चयत तत्त्वियमदयो निज आत्मा ॥३६॥

अन्वयायै—(व्यवहार) व्यवहारनय से (सम्महंसगुणाराचरणा)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य [च = और] (निश्चयदा)

निश्चयनय से (तत्त्वियमदयो) उन तीनों सहित (शिओ । अर्पा

(अर्पा) आत्मा (मोक्षस्वप्न) मोक्ष का कारण) कारण (जाये)

जानना चाहिये ॥ ३६ ॥

भाषा—मोक्षमाग के दो भेद हैं । १ व्यवहार और २

निश्चय । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य का समु-

दाय तो व्यवहारमोक्षमाग कहलाता है । तथा सम्यग्दर्शन,

सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य सहित आत्मा निश्चयमोक्ष

माग कहलाता है ॥३६॥

सम्यग्दर्शन आदि तीनों का समुदाय ही मोक्षमाग है, पृथक् २

नहीं । जैसे दवा क विश्वास, ज्ञान और सवन में से किता एक के न

होने से निरोगता का लाभ नहीं होता, उसी प्रकार अलग अलग

सम्यग्दर्शनादि से भी मोक्ष नहीं होता । कहा भी है कि—

सयोगमेवेह षडति तज्ज्ञा, न ह्येकचक्रण रथ

अधश्च पगुश्च यने प्रविष्टौ, तौ सम्प्रयुम्नी नगरं

अथात्—जैसे एक जगह अग्नि लगने पर दौड़ता हुआ अघा जल गया और देवता हुआ लौंगड़ा जल गया। दूसरी जगह दोनों ने परस्पर सहायता की जिससे दोनों अग्नि स यर गये इसी प्रकार सम्यग्दर्शनादि तीनों मिलकर ही मोक्ष का साधक होते हैं, अलग अलग होकर नहीं।

आत्म ही की निश्चयमोक्षमार्ग कहने का कारण

रयणत्तयं च षड्द्रह, अप्पारं मुयत्तु अरणदणियमिह ।

तस्मात्तत्त्रियमइया, होदि हु मोक्खस्स फारणं आदा ॥४०॥

रत्नत्रय न वतते, आत्मन मूक्त्वा अन्यद्रव्य ।

तस्मात्तत्त्रियमयम, मयात् तलु मोक्षस्य कारणं आत्मा ॥४०॥

अथवाच—(रयणत्तय) रत्नत्रय (अप्पारण) आत्मा को (मुयत्तु) छोड़कर (अरणदणियमिह) अ य द्र य में (च षड्द्रह) नहीं रहता तस्मात् इमलिय (तत्त्रियमइयो) उन तीनों सहित (आदा) आत्मा (हु) ही (मोक्खस्स) मोक्ष का (फारणं) कारण (होदि) होता है ॥४०॥

भाषाव्य—रत्नत्रय (सम्यग् ज्ञान, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र) आत्मा (जीव) में ही रहता है, अन्य द्रव्य में नहीं, इस लिये इन तीनों सहित आत्मा ही निश्चय मोक्ष मार्ग है ॥४०॥

व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्वरूप

जीवादी—सदृहयां, सम्मत्त रूपमप्पणो तं तु ।

दुरभिणियेमपिसुक्क, णाण मम्मंरु होदि सदि जमिह ॥४१॥

जीवादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं, रूपमात्मन तत् तु ।

दुरभिणियेषावमुपत, ज्ञानं सम्यक् तलु मयति सात यस्मिन् ॥४१॥

अर्थात्—जम एक जगह अग्नि लगने पर दौड़ता हुआ अथवा जल गया और देखता हुआ लौंगड़ा जल गया। दूसरी जगह दोनों ने परस्पर सहायता की जिससे दोनों अग्नि स बच गये इसी प्रकार सम्यग्दर्शनादि तीनों मिलकर ही मोक्ष का साधक होते हैं, अलग अलग होकर नहीं।

आत्म ही को निश्चयमोक्षमाग कहन का कारण

रयणत्तयं ण वट्ठइ, अप्पाणं सुयत्तु अणणदवियम्हि ।
तस्मा तत्तियमइयो, हादि हु मोक्खस्स वाररं आदा ॥४०॥

रत्नत्रय न घतते, आत्म न मुक्त्या अन्यद्रव्य ।
तस्मात्तत्त्रितयमय, भगवत् स्वतन्त्र मोक्षस्य कारण आत्मा ॥४०॥

अवयवार्थ—(रयणत्तय) रत्नत्रय (अप्पाण) आत्मा को (सुयत्तु) छोड़कर (अणणदवियम्हि) अथवा द्रव्य में (ण वट्ठइ) नहीं रहता, तस्मा (तत्तियमइयो) उन तीनों सहित (आदा) आत्मा (हु) ही (मोक्खस्स) मोक्ष का (वाररं) कारण (हादि) होता है ॥४०॥

भाषा—रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य) आत्मा (जीव) में ही रहता है, अन्य द्रव्य में नहीं, इस लिये इन तीनों सहित आत्मा ही निश्चय मोक्ष मार्ग है ॥४०॥

व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्वरूप

जीवादी—राद्धरं, सम्मत्तं रूपमप्पणो त तु ।
दुरिगिणिवेमनिमुक्क, णाय मम्मं सु हादि सदि जम्हि ॥४१॥

जीवादिश्रद्धान् सम्यक्त्व, रूपमात्मन तत् त ।
दुरिगिणिवेशविमुक्त, ज्ञान सम्यक् तत्त्व मयि तत् त ।

अन्यथाय—(अग्निह सदि) जिनके होने पर गु) हो (गण)
 धान दुरभिलिखमयिमुक्क) मंशयानि रहित (मम) मयाथ (होदि)
 होता है (एना) (सोपागोनरहय) अत्रात्क सानो तयो का भदान
 (मम्या) सभ्यग्यन [अधि = ६] (मं) वह सभ्यग्यन (गण्यो)
 आत्मा का (रूप) स्वरूप [अधि = ६] ॥४१॥

भाषाय— भगवन्निनद्रदय के द्वारा कह दुमाना तस्यो
 का ग्यथ भदान (१२११११) करत। ज्यरार सभ्यग्यन
 (सभ्यर न) पालाता है। आत्मस्वरूप के भदान विषय
 सभ्यग्यन कहलाता है। वह सभ्यग्यन आत्मा का स्वरूप
 (स्वभाव, गुण या धम) है। उस सभ्यग्यन के होत पर ही
 मंशय आत्मा का अभाव है। जान से ज्ञान सभ्यग्यन (स याथ
 जान) कहलाता है ॥२१॥

सभ्यग्यन का स्वरूप

— ११११

मंशयविमोहदिमम—विमजिनय अप्परमस्वम् ।

गहर्णं मम्म, गार्ण, गायार—मण्यमयं च ॥४२॥

मंशयविनाशयध्रमायोजितमु आत्मपरस्वस्य ।

गहर्णं सभ्यग्यनं गायारमनरदे य ॥४२॥

अन्यथाय—(अणपरमस्वम्) अणो स्वरूप का और पर
 यन्तुओं के स्वरूप का (मंशयविमोहदिममविमजिनय) संशय विषय
 और अनन्वयमाय रहित (गायारम्) आकार विषय रहित (गहर्ण)
 जैसा का तेसा जानना सम्म गाय) सभ्यग्यन [अधि = ६] (च) और
 [वह सभ्यग्यन] (अणुभव) शैकभेद वाण्य [अधि = ६] ॥४२॥

भाषाय—आत्मा और परयन्तुओं के स्वरूप का मंशय,
 तस्यय और अनन्वयमाय रहित तथा आकाररहित—“यह
 है, यह पट है” इत्यादि विषयमहित जैसा का तेसा

जानना सम्यग्ज्ञान (यथाध्वज्ञान) कहलाता है। अर्थात् आत्म स्वरूप का यथावत् जानना निश्चयमस्यग्ज्ञान कहलाता है। उस सम्यग्ज्ञान के भविष्यत आत्ति अनेक भेद होते हैं ॥४२॥

दशनोपयोग का लक्षण

ज सामर्थ्यं गहण, भाग्यं शेव कट्टुमाधार ।

अत्रिसेसिदृश अट्टे, दंसगमिदि भरणेण समये ॥४३॥

यत्सामान्यं ग्रहण, भावाना नैव कृत्वा आकारम् ।

अविशेषयित्वा अर्थान्, दशनमिति भण्यते समये ॥४३॥

अत्रार्थे—(अट्टे) पदार्थों को (अत्रिसेसिदृश) विशेषता नहीं करके (आधार) आकार को (शेव कट्टुं) ग्रहण नहीं करके (ज) जो (भाग्यं) पदार्थों का (सामर्थ्यं) सामर्थ्य (गहण) ग्रहण करना। [अस्थि = हड्डी, मो वद] (समये) जैन सिद्धांत में (दंसगं) दशनोपयोग (भरणेण) कहा गया है ॥ ४३ ॥

भावार्थ—पदार्थों का विशेपरूप और आकार रहित सामान्यरूप से सत्तामान का ग्रहण करना दशनोपयोग कहलाता है। इसमें 'यह फाला है यह छोटा है, यह बड़ा है इत्यादि किसी प्रकार का विकल्प पैदा नहीं होता। 'वस्तु है' इस प्रकार पदार्थ की सत्ता (मौजूदगी) मात्र प्रविभाक्षित होती है अर्थात् यह निर्विकल्प होता है ॥४३॥

दशन और ज्ञान की उत्पत्ति का नियम

दसणपुत्तं शाण, छदुमत्थारुं ए दुण्णि उअयोगा ।

जुगरं जह्मा केरलि-णाहे जुगव तु ते दां वि ॥४४॥

दशनपूर्वं ज्ञान, छद्मस्थाना न द्वी उपयागी ।

युत्पन्नस्मात् कवल्लि-नाथे युगपत्तु तीं द्वी अपि ॥४४॥

अथार्य—(छद्मत्वायां) चाद्योऽपि इति शब्दः
 (शान) शान (दस्यपुत्र) दशनपूर्वक [इति] इति
 (जज्ञा) क्योंकि (छद्मत्वायां) चाद्योऽपि इति शब्दः
 दो (उवश्रोगा) उपयोग (जुगज) एक शाय (इति] इति
 होते हैं] (तु) किंतु (केवलियादि) इति शब्दः
 वि) दोनों ही उपयोग (जुगज) एक शाय [इति] इति

भावः य—अल्पज्ञानियों के दर्शन और ज्ञान में
 नहीं हो मरने क्योंकि उनके दो उपयोग एक एक ही
 इमालिये उनका ज्ञान, दर्शन होने के लिए ही है
 केवली भगवान् के ये दोनों ही उपयोग एक एक ही
 लिये उनके दर्शन और ज्ञान में श्रम नहीं है
 उनके दोनों उपयोग एक साथ होते हैं ॥१८॥

विशेष—यहां पर तत्त्वार्थभदान का उल्लेख है
 चाहिये क्योंकि भदान तो विकल्पमुक्त है और तत्त्वार्थ
 रहित है ॥ १३ ॥

व्यवहारसम्यक्चारित्र्य का स्वभाव

अमुहादो विखिचिनी, सुहे पविर्त्ती य शान शान
 वदममिदिगुत्तिरूप व्यवहारस्या दु विद्वान् ॥१९॥

अशुभात् विनिवृत्ति, शुभे प्रवृत्तिम्
 ततसमितगुत्तिरूप, व्यवहारस्यात् तू विद्वान् ॥१९॥

अथार्य—(अमुहादो) अमुहादो है (विनिवृत्ति)
 निवृत्त होना (य) और (सुहे) शुभ विद्वान् (पविर्त्ती) पविर्त्ती
 करना (व्यवहारस्या) व्यवहारनय (विद्वान्) विद्वान्
 ज्ञानना चाहिये (इ) और (विनिवृत्ति) विनिवृत्ति

कदा हुआ [त = वह चारित्र] (वदसमिदिगुत्तिरुवं मत, समिति और गुप्ति रूप [अतिथि = है] ॥४५॥

भाषा—यसन, कृपाय और पाप आदि पापजनक कार्यों से निरक्त होना (निवृत्तरूप) तथा तान पूजा आदि धार्मिक कार्यों में प्रवृत्ति करना (प्रवृत्तिरूप) व्यवहार चारित्र कहलाता है । वह चारित्र ५ मत ५ सामति और ३ गुप्ति के भेद से १२ (तरह) प्रकार का है ॥४५॥

निश्चयसम्यक्चारित्र का लक्षण

बहिरम्भन्तरकिरिया—राहा भवकारणप्रणामट्ट ।

शाखिस्म ज जिगुत्तं, त परम सम्मचारित्त ॥४६॥

बहिरम्भन्तरकिया—रोधो, भवकारणप्रणाम ।

ज्ञानिन यजिनोक्त, तत् परम सम्यक्चारित्रम् ॥४६॥

अथवा—(शाखिस्स) ज्ञानी का (भवकारणप्रणामट्ट) संसार के कारणों का नाश करने के लिये (बहिरम्भन्तरकिरियारोहो) बाह्य और आन्तरिक क्रियाओं का रोकना (जिगुत्तं) जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा हुआ (परम) उत्कृष्ट या निश्चय (सम्मचारित्तं) सम्यक्चारित्र [जाण = जानना चाहिये] ॥४६॥

भाषा—सम्यग्ज्ञान होने के बाद संसार से छूटने के लिये त्रियोग की शुभ और अशुभ बाह्य और आन्तरिक क्रियाओं का रोकना (आत्मा को त्रिशुद्ध बनाना) निश्चय सम्यक्चारित्र कहलाता है ॥४६॥

ध्यानाभ्यास करने की हेतुपूर्वक प्रणाम

दुधिहपि मोवसहउ, भाणे पाउणदि ज मुणी शियमा ।

ताक्ष पयत्तचित्ता, जयं भाण ममम्भमह ॥४७॥

द्विविधमपि मोक्षहेतु ध्यानेन प्राप्नोति यत् मुनि निश्चिन्ता ।
तस्मात् प्रयत्नचित्ता, ह्य ध्याने समभ्यमध्यम् ॥४७॥

अवयवार्थ—(व) क्योंकि (मुनी) मुनि (शिष्या) नियम से (भाग्य) ध्यान में (दुर्गिहपि) दोनों ही (मोक्षलहेतु) मोक्ष के कारणों को (पाठ्यादि) प्राप्त करता है । (तस्मात्) इसलिये (ज्य) तुम सब (प्रयत्नचित्ता) प्रयत्नशील होते हुए (मर्षा) ध्यान का (समभ्यस्य) मही प्रकार अभ्यास करो ॥ ४७ ॥

भावार्थ—ध्यान करने से ही मुनियों के अनर्थक और व्यर्थहार दोनों प्रकार के मोक्षमार्ग की प्राप्ति होता है । इमन्विय यान् तुम्हें भी मोक्षप्राप्ति की इच्छा है, तो तुम भी प्रयत्नपूर्वक ध्यान करने का अभ्यास करो ॥४७॥

ध्यान में लीन होने का उपाय

मा मुञ्जह, मा रज्जह, मा दुस्मह इदृशिदृश्यत्सेसु ।

धिरमिच्छह जइ चित्त, त्रिचित्तभाणप्पमिद्धीण ॥४८॥

मा मूहत मा रज्यत, मा द्विष्यत इष्टानिष्टधेषु ।

धिरमिच्छत यदि चित्त त्रिचित्त ध्यानप्रतिद्वेष्ये ॥४८॥

अन्वयार्थ—(जइ) यदि (त्रिचित्तभाणप्पमिद्धीण) अनेक प्रकार का ध्यान करने के लिये (चित्त) चित्त को (धिर) धिर करना (इच्छह) चाहत हो [तो] (इदृशिदृश्यत्सेसु) इष्ट और अनिष्ट पदार्थों में (मा मुञ्जह) भौद मत करो (मा रज्जह) राग मत करो (मा दुस्मह) द्वेष मत करो ॥ ४८ ॥

त्रिचित्त के निम्न विचिता पाठ भी सम्भव है तिसका अर्थ शुभाशुभ त्रिकल्प रहित अनेक प्रकार पन्थ आदि ध्यान भी

भावार्थ—यदि सच्चा शुभाशुभ पन्थ
करना चाहत हो तो इष्ट (प्रिय) पन्थ में

करो और अनिष्ट (अप्रिय) पदार्थ में द्वेष मत करो । क्योंकि इष्टानिष्ट पदार्थों में राग द्वेष से जीव संसार में फँसना है, और इनके परित्याग से रत्नत्रय की प्राप्ति होती है तब जीव संसार से मुक्त भी हो जाता है ॥४८॥

ध्यान करने योग्य मंत्र

पण्णतीस सोल छप्पणा, चदु दुग्गेर्ग च जवह भाएह ।

परमेष्ठिवाचयाण, अण्ण च गुरूण्णसेण ॥४९॥

य त्रिशत् षोडश पट् पच चतु द्विस्मेरु च जपत ध्यावत ।

परमेष्ठिवाचकानाम्, अन्यच्च गुरूपदेशेन ॥४९॥

अवधार्य—(परमेष्ठिवाचकाणां) परमेष्ठिवाचक (पण्णतीस)
पैंतीस (सोल) सोलह (छप्पण) छह पांच (चदु) चार (दुग्)
दो (एग) एक अक्षर वाले मंत्र को [तथा] (गुरूण्णसेण) यथार्थ
गुरु के उपदेश से (अण्ण) और मंत्रों को [भी] (जवह) जो
(च) और (भाएह) ध्याओ ॥ ४९ ॥

भावात्—परमेष्ठिवाचक पैंतीस, सोलह, छह, पांच,
चार, दो और एक अक्षर वाले तथा गुरूपदिष्ट अन्य (सिद्ध
वक्त्रादि) मंत्रों का भी जाप तथा ध्यान करना चाहिए ॥४९॥

अरिहत्तपरमशी (सच्चे देव) का स्वरूप

एण्णचदुघाड्कम्मो, दमण्णसुहण्णाराणीरियमइयो ।

सुहदेहत्थो यप्पा, सुद्धो अरिहो विचिन्तिज्जी ॥ ०५ ॥

नष्ट चतुष्पाति-कर्मा, दशान-सुख-ज्ञानमय ।

शुभदैहस्य आत्मा, शुद्ध अहम् विचिन्तनीय ॥५०॥

अवधार्य—(एण्णचदुघाड्कम्मो) चार पातिया कर्म के नाशक
(दमण्णसुहण्णाराणीरियमइयो) अनन्तदशान, अनन्तसुख, अनन्तज्ञान

श्रीर अन्नन्तवीय का धारक (मुद्देहत्थो) परमौगारिकगौर (मुद्दे) अणदशदीपरहित (अणा) आत्मा (अरिहो) परमशी [अरिप = है, सो = वह, अरिहत परमशी] (जिह्वेत्थो) ध्यान करने योग्य है ॥२०॥

भाषार्थ—चार घातिया कर्म का नाष्ट तत्त्व कल्प-
वतुष्टय का धारक, मत्तधातुगहत, परमौगारिक-
श्रीर अष्टादशानेपरहित आत्मा (श्रीर जट्टे) अणदश
परमशी (सकल परमात्मा) कहलाना है। तत्त्व से ध्यान
करना चा ह्य ॥२०॥

सिद्धपरमेशी का

शुद्धकम्मदेहो लोयालायम्य इन्द्रे श्रुतः।

पुरमायारो अण्णा, मिट्ठा भाण्डे नन्दे ॥२१॥

नष्टाष्टमदेहा, लोयालायम्य इन्द्रे श्रुतः।

पुरपाकार अत्मा, सिद्ध कम्मदेहो ॥२१॥

अन्वयाय — (शुद्धकम्मदेहो) इन्द्र के लिये श्रुतः श्रुतः

(लोयालोपरस) लोक श्रीर अण्णा (अण्णा) कम्मदेहो ॥ १॥

[य - श्रीर] (मिट्ठा) देहक कम्म (मुद्देहत्थो) इन्द्र

(लोयसिद्धत्थो) लोक कम्मदेहो (अण्णा) कम्मदेहो ॥ २॥

सिद्ध परमशी [अरिप = है, सो = वह, अरिहत परमशी] को

तुम सब प्याथो ॥२१॥

भाषार्थ—शुद्धकम्मदेहो श्रुतः श्रुतः

अलोय का हाण्डे इन्द्र (इन्द्रे श्रुतः)

शरीर से शुद्ध अण्णा (अण्णा) धारक श्रीर

स्थित आत्मा सिद्ध कम्मदेहो

उस को सब प्याथो ॥२१॥

आचायपरमेष्ठी का स्वरूप

दृश्याणाण्यपहाणे, वीर्यिचारित्त - वरतनायारे ।

अप्यं पर च जुजइ, सो आहरियो मुणी भेआ ॥५२॥

दर्शनज्ञानप्रधाने, धीयचारित्रवरतप—आचारे ।

आत्मान परं च युनक्ति, स आचाय मुनि ध्येय ॥५२॥

अवयार्थ—[जो = जो] (दृश्याणाण्यपहाणे) दृशाचार और ज्ञानाचार हैं प्रधान जिनमें ऐसे (वीर्यिचारित्तवरतनायारे) धीर्याचार, चरित्राचार और उत्तमतपदचरणाचार में (अप्य अपने को (च) और (पर) दूसरे को जुंजइ) लगाता है (सो) यह (मुणी) मुनि (आहरियो) आचाय परमेष्ठी [अत्यि = है, सो = यह आचाय परमेष्ठी भी] (भुओ) ध्यान करने योग्य है ॥५२॥

भाषाथ—जो साधु दर्शन, ज्ञान, धीर्य, चारित्र और तपश्चरण इन पांच आचारों को स्वयं पालते हैं तथा दूसरों में पालन कराते हैं उ हैं आचाय परमेष्ठी कहते हैं। उका भी ध्यान करना चाहिये ॥५२॥

उपाध्यायपरमेष्ठी का स्वरूप

जो रयणत्तयजुत्तो, शिञ्चं धम्मोरएसणे शिरदो ।

सो उवभाओ अप्पा, जदिवरवसहो एमो तस्स ॥५३॥

य रत्नत्रययुक्त, नित्य धर्मापदेशने निरत ।

स उपाध्याय आत्मा, यत्तिवरकृपम नमस्तस्मै ॥५३॥

अवयार्थ—(जो) जो (रयणत्तयजुत्तो) रत्नत्रय सहित (य) और (शिञ्चं) हमेशा (धम्मोरएसणे) धर्मोपदेश देने में (शि.दो) लयलीन [होदि = हाता है] (सो) यह (जदिवरवसहो) मुनी-वरों में भद्र (अप्पा) आत्मा (उवभाओ) उपाध्याय परमेष्ठी

[अयि = हे, तस्स - उस उपाध्याय परमेशी के लिये] (यमो)
नमस्कार [अयि = हो] ॥५०॥

भावार्थ—जो रत्नत्रय का धारक, धर्मोपदेशक और
मुनिपुत्र का धारक होता है वह उपाध्याय परमेशी कहलाता है ।
उसका भी ध्यान करना चाहिये ॥५०॥

साधुपरमेशी (दिगम्बर जैन मुनि का लक्षण)

दंमण्णायुममग्ग, मग्ग मोस्सस्स जो ङ्गु चारिणं ।

साधयदि खिच्चमुद्ध, माहू सो मुणी यमो तस्स ॥५१॥

दशनज्ञ नसमग्ग माग्ग मोत्तस्स यदि चारिणम् ।

साधयति नित्यशुद्ध, साधु स मुनि उमरतस्मै ॥५१॥

अर्थ—(जो) जो (मुणी) मुनि (मोत्तस्स) मोक्ष के
(माग्ग) मागस्वरूप (दंमण्णायुममग्ग) दशन और ज्ञान सहित
(खिच्चमुद्ध) दमशा शुद्ध (चारिणं) चारित्र्य को (साधयदि)
साधता है (सो) वह (माहू) साधु परमेशी । अयि = हे] (तस्स)
उस साधु के लिये (यमो) नमस्कार [अयि = हो] ॥५१॥

भावार्थ—जो वीतराग मुनि मोक्ष के कारण निर्मल
सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य (रत्नत्रय) को धारण
(साधय) करते हैं वे हैं साधु परमेशी कहने हैं । उनका भी
ध्यान करो ॥५१॥

प्याता, ध्यय और ध्यान (निश्चयप्यान) के स्पष्टीकरण

अ किंचिनि चिंतता, खिरीहवित्ती ह्ये जदा साहू ।

लद्धूण्य एयन, तदा हु तं तस्स खिच्चय भ्णाय ॥५२॥

अन्वयाय—(जदा) जब (साहू) साधु (एयत्त) एकाग्रता
को (लद्धूण्य) प्राप्त होकर (अ किंचिनि) जो कुछ भी ()

चितवन करता हुआ (गिरीह्विती) इच्छारहित (हवे) होता है (तदा) उस समय (हु) ही (तत्स) उस साधु का (त) वह (शिञ्चय) निश्चय (भाण) ध्यान [होदि = होता है] ॥५५॥

भावाथ—मन वचन और काय की क्रियाओं को एका प्रतासहित अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग परिमर्हों से निस्पृह आत्मा (ध्याता) जन आत्मस्वरूप या शरिहत आदि (ध्य) का तन्मयतापूर्वक चिन्तवन (ध्या) करता है तब उसका वह ध्यान निश्चय ध्यात कहलाता है ॥५५॥

परमध्यात का लक्षण

मा चिद्गृह मा जपद, मा चित्तह किंवि जेण होइ यिरो।

अप्या अप्पम्मि रथो, इणमेव परं हवे भाणं ॥५६॥

अवपाथ—(किंवि) कुछ भी। (मा चिद्गृह) चष्टा मत करो (मा जपद) मत धोखो। (मा चित्तह) मत निवारो (जेण) जिसे (अप्या) आत्मा (अप्पम्मि) आत्मा में ही (रथो) लवलीत [होइ = होकर] (यिरो) स्थिर (होइ) होता है (इणमेव) यह ही (परं) उत्कृष्ट (भाणम) ध्यान (हवे) है ॥५६॥

भावाथ—मन, वचन, काय की चेष्टा को रोक कर आत्मा को आत्मचिन्तवन में ही लगाना परम ध्यान कहलाता है। इसलिये उन चीनों की प्रवृत्ति को रोक कर आत्मा को आत्मस्वरूप में ही लीन करना चाहिये ॥५६॥

ध्यान का कारण या उपाय

तनसुदरद्वं चेदा, भाणरह—धुरंधरो हवे जह्या।

तह्या तत्तियणिरदा, तज्जलढीए सण होइ ॥५७॥

तपश्चतस्रसंज्ञं चैता, ध्यानस्यपुण्यं भवति यस्मात् ।

तस्मात् तद्विनायनिरता, तल्लक्ष्यं सदा भवत ॥५७॥

अत्राय—(वृद्धा) त्रिसु धारण ये (तत्रमुदधरं) तप, शान्त और मनो का धारक (चैदा) आत्मा (भगवत्पुरुषं) ध्यान रूपी रथ को टोचन वाला (एवे) होता है (तस्मा) इसलिये (तल्लक्ष्यं) उस ध्यान की प्राप्ति के लिये (सदा) हमेशा (तच्चयनिरता) उन तीनों में लीन (होइ) होखो ॥५७॥

भावार्थ—तपश्चरण का धारक शास्त्रों का शास्त्री और मनो को पालन वाला आत्मा ही उत्कृष्ट ध्यान कर सकता है । इसलिये उत्कृष्ट ध्यान की प्राप्ति के लिये कारणभूत तपश्चरण व्यवस्था और त्रयपालन में मग्न लीन रहना चाहिये ॥५७॥

अथकार का लघुनाशकाशन

द्वयमगदमिर्गं मुण्णिग्याहा, दोमसचयचुदा मुदपुण्या ।

मोत्रयतुतणुमुत्तधरण, येमिचन्मुण्णिग्या भणिय ज ॥५८॥

द्र संमहमिद मुनिनाथा, दापसत्रयच्युना युतपूर्णा ।

शाधयत् तनुसुत्रधरणं तमिचद्रमुनिना भाणत यत् ॥५८॥

अत्राय—(तणुमुत्तधरेण) अल्पज्ञानी (येमिचन्मुण्णिग्या)

मुक्त नेमिचन्द्र मुनि ने (नं) जो (इण) यह (द्रव्यसंग्रह) इन

(भणिय) कहा है [इसको] (दोमसचयचुदा) तपश्चरण

संशयादि दोष रहित (मुदपुण्या) अतमान परमात्म तपश्चरण

तथा भावभक्त क शास्त्रा (मुण्णिग्याहा) अध्यास (होइ)

संशोधन करे ॥५८॥

भावार्थ—गुरु अल्पज्ञानी नेमिचन्द्रनेमिचन्द्रनेमिचन्द्र

वनाय है उसमें अनेक गलतियों के होने हैं ॥५८॥ है,

इसलिये मरे से प्रधान मुनि इसका संशोधन करे ॥५८॥

स्त पर्यायों

* ममाप्तोऽयं द्रव्यः ।

।

विशेष विवरण ।



समुद्घात का लक्षण

मूलशरीरमद्युडिय, उत्तरदेहस्त जीवपिंडस्त ।
 शिग्ममण देहादो, हादि समुग्घादणाम च ॥

अवयवार्थ— मूलशरीर) मूल शरीर को (अर्द्धद्विय) नहीं छोड़कर (उत्तरदेहस्त जीवपिंडस्त) आत्मा के प्रदेश रूप उत्तरदेह का (देहादो) शरीर से (शिग्ममण) बाहर निकालना (समुग्घादणाम) समुद्घात (हादि) कहलाता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—मूल शरीर को नहीं छोड़ कर वेदना आदि सात कारणों से आत्मा के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकालना समुद्घात कहलाता है ।

—यवहारनय से जीव के प्राण

जीव	इन्द्रिया	काम आयु स्वास सरया
एकेन्द्रिय, स्पर्शन		" " " ५
द्वीन्द्रिय ,	रसना	घचन " " " ६
त्रीन्द्रिय "	" पाण	" " " " ७
चतुरिन्द्रिय "	" " चक्षु	" " " " ८
पञ्चिन्द्रिय { असेनी "	" " " कर्ण	" " " " ९
पञ्चिन्द्रिय { सेनी "	" " " " मा	" " " " १०

समुद्घात के सात भेद

वयण्कमायनेगु ध्वियो, य मरण्तियो समुग्घादो ।
 तेजाहाये छटो, सत्तमओ बबलीण तु ॥

काज्यं—धना, कणाय, विक्रिया, मारणातिक, तैजस, अहार और कर्त्तव्य ये ७ समुदात हैं ॥ ४ ॥

पर्याप्त और अपर्याप्त

जह पुरणापुण इ गिहघटवत्यादियाई दय्याई ।

तह पुण्णरा जाया, पत्रतिदरा मुणेयया ॥

भावार्थ—जिस प्रकार मकान, धड़ा और बख आदि द्रव्य पूर और अधूरे होते हैं, उसी प्रकार जीव भी पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों प्रकार के होते हैं ।

एक अन्तर्मुहूत में छहों पर्याप्तियां पूर्ण हो जाती हैं । अन्तर्मुहूत दो भेद हैं । निष्कल्पपर्याप्त और लक्ष्यपर्याप्त । अन्तर्मुहूत पर्याप्त के पर्याप्तियां पूर्ण नहीं होती । यह एक स्थान में १०० बार होता और १०० बार मरता है । ४०० मिनट में १ ०३ बार होता है ।

पर्याप्तियों का विवरण

जीव	पर्याप्तियां	अवस्था
एवेन्द्रिय	आहार, शरीर, इन्द्रिय, रसायन, कर्म	१
विकल्प और अस्मिन्ने इन्द्रिय	" " " " " "	२
सैनी एवेन्द्रिय	" " " " " "	३

सिद्ध परमार्थ के आठ मूलांग

सम्पत्तयाद्यदमण शीतियुक्तं तदा अन्तरात् ।

अगुण्णदु अ ताई, अगुण्णदु हो १ मिवात् ॥

भावार्थ -- २--विद्यमान है यहाँ पर्याप्तियों की संख्या

आ द्रव्य के समान गुणों द्वारा

२—यथार्थ तर्कों के विषय में विपरीत अग्निप्राय रहित भद्रान्
सायिकसम्बन्ध गुण है। ३—लौकालोक के समस्त पदार्थों के
सामान्य को प्रदण्य करने वाला वेगलक्षणगुण है।

४—अनन्त पदार्थों के क्षार म लैद का अभाव रूप चतुस्र
अनन्तगीय गुण है।

५—सिद्धस्वरूप का सूक्ष्म अतीन्द्रिय नियमना का सूक्ष्म
गुण है। ६—जैसे एक दीपक व प्रकार म अनेक दीपकों के प्रकाश
का समावेश हो जाता है, वही प्रकार एक सिद्ध के क्षेत्र में सकार तथा
व्यतिकर दोपरहित अतः सिद्धों को अवकाश देने का सामान्य सूक्ष्म
अवगाह्य गुण है।

७—लोहपिण्ड के समान गुदपने का अभाव तथा आक की
रुदे के समान लघुपने का अभाव अगुरुलघुत्वगुण है।

८—दुःख का सवया अभाव अयायापत्य गुण है। मिद्र के
ये ८ विशेष गुण हैं।

कर्मों के नाश से प्राप्त गुण

सिद्धों म मोहनीय कर्म के अभाव से सम्बन्ध, ज्ञानावरण कर्म
के अभाव से अनन्तज्ञान दशनावरण के कर्म के अभाव से अनन्त
दर्शन, अतरायकर्म के अभाव से अनन्तधीय, नामकर्म के अभाव से
सूक्ष्मत्व आयुक्तम के अभाव से अवगाहनत्व, गोत्रकर्म के अभाव से
अगुरुलघुत्व और वेदनीयकर्म व अभाव से अव्याप्यत्व गुण प्रगट
होते हैं। अर्थात् आगे कर्मों का नाश होने पर सिद्धों के ये आठ गुण
प्राप्त होते हैं।

अवगमन का कारण

पयडिडिदिअणुमाग-प्यदेशधेहि सध्यने मुनरी ।
उडु गच्छदि सेता, विदिताव जं गदि जति ॥

अन्वयार्थ—(पयट्टिट्टिदिशुमागपदेशाग्नेहि) प्रकृतिवच स्थितिवच अनुभागवच और प्रदेशवच स (सप्तौ) सप्त प्रकार स (मुक्ती) छूटा हुआ जीव (उरु) ऊपर (गन्धदि) जाता है [डू = थोर] (नेहा) शय जीव (विनिसायन) विनिशाओं को छोड़कर (यदि) दिशाओं को (जति = जात है) ।

भाषाव्य—प्रकृतिवच प्रदेशवच, स्थितिवच और अनुभागवच इन ४ व घों से छूटा हुआ मुक्तजीव स्वभाव से ऊपर को ही जाता है । किन्तु कमवचसहित संसारी जीव विदिशाओं को छोड़कर आकाश के प्रदेशों की भली व अनुमादि दिशाओं को ही जाता है ।

परमाणु म रूपादि की सिद्धि

जैसे शुद्ध सिद्ध जीव में अनन्तचतुष्टय अतीन्द्रिय है उन्ही प्रकार शुद्ध पुद्गल परमाणु में रूपादिचतुष्टय भी अतीन्द्रिय है । जैसे रागादि स कमवधारस्था में ह्यादि अशुद्ध रहते हैं उन्ही प्रकार रिन्म्व रुद्धत्व गुण से द्ययुक्त आदि वधारस्था म परमाणु म रूपादि भी अशुद्ध रहते हैं । इससे परमाणु भी मूर्तिक है ।

पंचमि अक्षरों का मन्त्र

एमा अ रहताण, एमा मिद्रःण, एमा आदरियाण ।

एमा उत्रभावाण, एमा लाय सव्वसाहण ॥ (सत्र १२)

१६ सोलह अक्षरों का मन्त्र—अरिहत सिद्ध आदरिय उत्रभावा, साट्ट । ६ छह अक्षरों का मन्त्र—अरिहत सिद्ध/अरहत सिद्ध, ओं नम सिद्ध म्य, अथवा—नमो हसिद्ध म्य (नामपाद) ।

५ पांच अक्षरों के मन्त्र—अ सि या उ सा । (आदिपाद)

४ चार अक्षरों के मन्त्र—असिताट्ट अरिहत । २ दो अक्षरों के

मन्त्र—सिद्ध ओं ही, । १ एक अक्षर का मन्त्र—आ, ओम्, ओ,

इत्यादि ।

गन थय—द्रव्य क्षेत्र, काल भाव की अपेक्षा दूसरे के मन में स्थित सरस और गूढ रूपी पदार्थ को जानने वाला ज्ञान ।

पंचलक्षण—त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों की समस्त पर्यायों को दृष्टि के समान स्पष्ट ज्ञान ।

मत्स्यज्ञान—इन्द्रियों और मन की सहायता से वस्तु को जानने वाला ज्ञान ।

श्रुतान्वान—मत्स्यज्ञान के द्वारा जाने हुये पदार्थ के विशेष को जानने वाला मिथ्याज्ञान ।

विभङ्गज्ञान—द्रव्य क्षेत्र, काल भाव की अपेक्षा रूपी पदार्थों का ज्ञान मिथ्याज्ञान । इसे बुभुक्षु भी कहते हैं ।

समुद्घातों के लक्षण

वेदना—तीव्रवेदना के समय मूल शरीर को न छोड़कर आत्मा के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना ।

कषाय—तीव्र क्रोधादि कषाय के उदय से पर का घात करने के लिये मूल शरीर को न छोड़कर जीव के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना ।

वन्ध्या—किसी प्रकार का शारीरिक विकार (अनेकरूप या वृद्धि) करने के लिये मूल शरीर को न छोड़कर आत्मा के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना ।

मारणान्तिव—शरीर में रहते हुए ही अग्रिम जन्मस्थान का स्पष्ट करने के लिए जीव के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना ।

५ तैत्तस—ससार को रोग या दुर्भिक्ष आदि से दुरती देखकर सयमी महामुनि के दया उत्पन्न होने पर उन की कृपा से प्रभाय से मूल शरीर को न छोड़कर उनसे दहिने कंधे से पुरुष के आकार का सफेद पुतला निकल कर दक्षिण प्रदेशों देकर उस रोगादि को

दूर कर दिए जाने स्थान में पवण कर जाता है यह शुभनेत्रम
कल्पता है। अनिष्टकारक कारण देव कर मयमी महासुनि क मय
में शोध होन पर उनका बाँव कथे में पुराणकार और विदुष कर रंग
का पुतला निकल कर त्रिप पर शोध हो उत नाई म विद्या न मय
कर उन सुनि को भी भय कर जाता है यह मशुभनेत्रम कल्पता है।

आहारक--छटवें गुणस्थान के किसी श्रुतिपाठी सुनि क
सौरभ में मूल शरीर को न छोड़कर मयक छ एक शाय १०/१०
पुरुषाकार सपद हन टक क समान पुतला निकल कर अतः सुन न
अने स्थान में प्रवेश करता है उस आहारकममुद्गन कर्त है।

७ करण--केवलज्ञान के होने पर मूल शरीर को न छोड़कर
एक कण्ट आकृति का त्रिपा द्वारा कण्ठो के अन्त क चोटी
का फैलना।

गुणस्थानों का लक्षण

विद्यया--विष्यान्धन के उदय से सूर्यसङ्घात वलार्थ
अज्ञान रहित परिणाम।

सामान्न--अनन्तानुष पीचानुष में प्रति ईरक के उदय में
उपशम सम्भवत म अष्ट विद्यु माधवती दीक्षत।

मिथ्र--सम्बन्ध विष्यान्धन कृति के उदय में सुष दही और
गुह के स्याद के समान सम्भव और विद्युत् सङ्घात सुष परिणाम।

अद्विगतसम्भवत--सम्बन्ध ईरक के उदय में विद्युत् सङ्घात

एशावतन--सम्भवत और ईरक के उदय में विद्युत् सङ्घात

प्रमत्तसंयत--महाप्रताप का इच्छन आदि सम्भवत
अन्यक्त प्रमाद सति परिणाम।

अप्रमत्तसंयत--प्रमत्तसंयत

अपूर्वकरण—उत्तरोत्तर निशुद्ध अपूर्व परिणाम ।

अनिवृत्तकरण—एक समय में सदृश परिणाम ।

सूक्ष्मसापराय—शेष कर्मायों के पूरा उपशम या क्षयसहित और सूक्ष्म लोभकपाय के उदय सहित परिणाम ।

उपशातकपाय—कर्मायों के पूर्ण उपशम सहित परिणाम ।

क्षीणकपाय—कर्मायों के सर्वथा क्षयसहित परिणाम ।

सयोगकेवली—योग की प्रवृत्तिरहित केवलज्ञानरूप परिणाम ।

अयोगकेवली—योग की प्रवृत्तिरहित केवलज्ञानरूप परिणाम या भाव ।

आठ कर्मों के लक्ष्य

ज्ञानावरण—जिस कर्म के उदय से जीव के ज्ञान होने में प्रतिबन्ध होता है वह कर्म ।

दर्शनावरण—जिस कर्म के उदय से आत्मा के दशगुण में प्रतिबन्ध होता है वह कर्म ।

वेदनीय—जिस कर्म के उदय से जीव के सुख और दुःख का अनुभव होता है ।

मोहनीय—जिस कर्म के उदय से आत्मा के भद्धान (विश्वास) व चारित्र्य गुण का घात होता है ।

आयु—जो कर्म जीव को नरक आदि गति (पर्याय या भय) में रोकता है ।

नाम—जिस कर्म के उदय से शरीर और अङ्गोपाङ्ग आदि की लज्जा होती है ।

जिसके कारण जीव लोकमाय और लोकनिध कुल में

अन्तराय—जिसके उदय के दानादि में अन्तराय (विप्र) होता है, वह कम ।

चार घ घों क लक्षण

प्रवृत्तिरध—कम परमाणुओं का हानाररणादि शक्तिसहित हो जाना ।

स्थितिरध—जैसे दूध में मिटास रहने की मर्यादा होती है उसी प्रकार जीव के प्रदेशों में जितने समय तक कमसम्बन्ध से स्थिति होती है उतना समय ।

अनुभागरध—जैसे बकरी आदि के दूध में मधुरता (मिटास) की अस्तम्यता (होनाधिकता) होती है उसी प्रकार आत्मा के प्रदेशों में स्थितियों की हीनाधिक फल देने में समर्थ शक्तिविशेष ।

प्रदेशरध—एक आत्मा में सिद्धों से आन्तरिक भाग और अभ्यन्तरीय से अन्य तगुणों के परस्पर गुण प्रतिक्षण बाध को प्राप्त होते हैं उनकी संख्या ।

अनीव—चेतना (दृश्य ज्ञान) शक्ति रहित वस्तु ।

अनिप्रार्थ—मन और इन्द्रियों को अप्रसन्न करने वाला पदार्थ ।

अधिकार—किसी वस्तु की व्यवस्था या वर्धन करने का तरीका । अथवा प्रकरण, परिच्छेद या अघ्याय ।

अनुप्रेक्षा—स्मार, शरीर और भोग आदि के स्वरूप का बार बार विचार करना

अयामक—जिसके

अनध्यवसाय—'बुद्ध है इस प्रकार निश्चयरहित ज्ञान ।

पूर्ण नहीं है

अमूर्तिवै—
र इवे नम

अनन्तचतुष्टय—जिनका कमी अथवा नाश नहीं होता ऐसे ज्ञानादि ४ गुण ।

- अणुभ्रम—पापों पापों तथा इन्द्रियों और मन के विषय में प्रवृत्ति ।
- अशुभकर्म—पापबन्ध करानेवाले दुःखदायक कर्म ।
- अशुभक्रिया—वचन और काय की अशुभप्रवृत्ति अशुभवाच्य क्रिया । तथा मन में दुर्विचार होना अतः अतः क्रिया है ।
- आर्या—पदार्थ की विद्यमानता ।
- अस्तिभाव—बहुप्रदेशी द्रव्य ।
- असंजी—मनरहित जीव ।
- इन्द्र—सामान्य देवों से विशेष अणिमा आदि गुणों से परमेश्वर्य को प्राप्त राजा के समान देव ।
- इन्द्रिय—सहारी जीव की पहिचान का चिह्न ।
- इन्द्रिय—मन और इन्द्रियों को प्रसन्न करने वाला पदार्थ ।
- आचार—सम्पदशन आदि पांच आचारों का पालन ।
- आत्मा—ज्ञान दर्शन की शक्ति सहित पदार्थ ।
- आयु—जीव को नरक आदि गतियों से रोकने वाला कर्म ।
- उत्पाद—मरीच पर्वण्य (हालत अवस्था) की उत्पत्ति ।
- उपयोग—जीव का दर्शन ज्ञान या देखने जानने की शक्ति । कर्म रागादि के निमित्त में कामगुणवगणारूप पुद्गल रूपाका आत्मा में संबन्ध होता ।
- कल्परासा—सोलहस्वर्गों का देव ।
- कराय—आत्मा का क्रोधादिरूप भाव (परिणाम) ।
- काय—बहुप्रदेशी या शरीर ।
- कालद्रव्य—जीव स्वयं परिणमता है तथा अन्य द्रव्यों का परिणमन में सहकारी होता है या घड़ी घण्टा आदि ।
- केरली—त्रिकालवर्ती पदार्थों की सभी पर्वण्यों को एक साथ जानने वाला शक्ति ।
- गन्ध—नासिका का विषय ।
- गुणस्थान—जीव के उत्तरोत्तर विगुण और उत्तम भाव ।
- घातिया—आत्मा के ज्ञानादि भावस्वरूप गुणों का घातक ।
- चेतना—दर्शन ज्ञान शक्ति ।
- चेतन्यभाव—ज्ञान दर्शन उपयोग ।

दृशस्थ—मति, भुत, अथवा द्रव्यप्राण—संसार जीव में
 और मन पथ्य हात का जीवित होने के ध्वनसार में
 धारक प्राणी । कारण ही द्रव्य आदि ।

जीव—चेतनासहित वस्तु । अणुधर्म—आदरात् ।

✓ जीवसमास— जिसमें अनेक प्रकार ध्याना—ध्यान करने का ।

के जीवों का सत्त्व रूप से ध्यान—उपस्थितिके रूप में

मोक्ष किया जाता है । कर अनेक मन को एक ही

ज्ञानोपयोग—प्राणों का विशेष लक्षण में स्थित रहना ।

स्वरूप और आकार सहित ध्यान—उपस्थितिके रूप में

विशेष रूप से ज्ञान । ध्यान—उपस्थितिके रूप में

तीर्थद्वार—कस्याणकीं स पुरुष धीमन्—विष्णु

धर्मरूपी तीर्थ का अलान् परिश्रम क

याणा प्रथम परमेष्ठी । निषिद्धन्—निषिद्ध

प्रस—प्रसन्नामकम का उदय मति एतत्—एतत्

दो इन्द्रिय आदिक जीव । एतत्—एतत्

दुरभिनियश—संशय, निषेध एतत्—एतत्

और अनप्यवसाय । एतत्—एतत्

देव—अष्ट आदियों से निर्वाह एतत्—एतत्

विक्रम प्रवृत्ति करन क एतत्—एतत्

अथवा मुन्दर एतत्—एतत्

धारक देवता एतत्—एतत्

दशप्रत्यय—दश प्रत्यय एतत्—एतत्

की मद गुणिक एतत्—एतत्

की रसहानने एतत्—एतत्

द्रव्य—द्रव्य ही एतत्—एतत्

वस्तु ही एतत्—एतत्

वस्तु ही एतत्—एतत्

वस्तु ही एतत्—एतत्

परीपह—निजरा और रत्नत्रय की स्थिरताके लिये शारीरिक तथा मानसिक दुखों का समतापूर्वक सहन ।

पाप—हिंसा आदि लोकनिन्द्य कार्य ।

परोक्ष—इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला स्पष्ट तारहित ज्ञान ।

पर्याप्तिरु—जिसके शरीर पर्याप्ति पूरा हो जाती है वह जीव ।

पयाग्न—पुद्गल परमाणुओं की शरीर और इन्द्रिय आदि रूप परिणामन करने की शक्ति की पूराता ।

पुद्गल—जो पूरता और गलता है अथवा जिसके परमाणु मिलते और विखरते हैं । या जिसमें रूपादि होते हैं वह ।

पुण्य—सच्चे देव द्वारा कथित धार्मिक कार्यों का फल ।

प्रत्यक्ष—इन्द्रिय आदि की सहायता के बिना फल आत्मा की सहायता से होने वाला ज्ञान ।

प्रमाद—संज्वलन और नोक पाय के तीव्र उदय से अति-

चाररहित चारित्रपालन में उत्साह न होना तथा स्वरूप की सावधानी न होना ।

प्राण—जिनके कारण चेतना या जीवितमन का बोध होता है ।

घन्ध—राग और द्वेष आदि भावों के कारण आत्मा और कर्मों का परस्पर एक सेना चगाही हो जाना (मिल जाना)

धल—विचारणी बोलने और शरीर धारण करनेकी शक्ति ।

धादर—धादर नामकम का उदय होने पर जो दूसरे पदार्थों से स्वयं रूकता है अथवा दूसरों को रोकता है ।

भावगण—देखने और जानने की शक्ति या ज्ञान दशन ।

भावश्रुत—शुद्ध आत्मा के समुल होने से ज्ञानस्वरूप आत्मा के आकार से सवि-कल्प होने पर भी निर्विकल्पक प्रत्यक्षप्रमारा रूप आत्मज्ञान अथवा परमात्म रूप द्रयश्रुत से उत्पन्न निर्विकल्प स्वसवेदर ज्ञान ।

मार्गशा—जिनसे या जिनमें जीवों

- का अथवापण (लक्षण) या वायु वा यक—वायु ही त्रिषका
विभाग किया जाता है । शरीर होता है जैम हवा ।
- मिथ्यात्व—यथार्थ तत्त्वों का विषय—उल्टा ज्ञान । जैसे
 मिथ्या भ्रमन । सीर को चांदी जानना ।
- मुनिप्रन—५ मरामन ५ समिति विगप—जो घम या गुण सास
 और ३ गुति का गणन । सास मस्तुद्या में रहता है ।
- भोज—कमवच ५ कारणा का अय—यक्ष्मी पर्याय का नाश ।
 अभाव और निजरा के द्वारा द्वयकार १५—दूसरे पर्याय के सं
 आत्मा से सर कर्मों का योगेमिस्त्री अवस्था यत्ना
 स्य हो जाना, भङ्ग जाना । याणा भा । जैसे मिट्टी क
- योग—मन पचन काय के पड़े में दूध रखा जाने पर
 निमित्त से आमा क प्रदरों उस दूध का पहा करना ।
- का हलन चलन योग कह- प्रन—पाचों पाचों या अष्टों के
 लाना है । अथात् त्रियोग की संकल्पपूर्वक विरक्त होने ।
- हलन चलन क्रिया द्रव्ययोग व्यमन—खाटी अन्न के क्रिया
 और आत्मप्रदरों की हलन परतु पर अद्विष्ट जानना ।
- चलन क्रिय भावयोग है । शरीर—त्रिषक अन्न के अन्न
- राग—त्रिषके उदय से विषयों म रिक्त अन्न अन्न होते हैं ।
- अनुराग होता है । गुमकम—गुमकम अन्न के
- रम—रसना इन्द्रिय का त्रिय । गुमक्रिया—रसना के अन्न के
- रूप—नत्र इन्द्रिय का त्रिय । की अन्नकर्म अन्न के
- लोक—जहाँ पुरण या पाप का क्रिया अन्न के अन्न के
- पल या जीवादि क द्रव्य देख विरक्त अन्न के अन्न के
- जाते हैं घट स्थान । अन्नकर्म अन्न के

सफलप्रत्यक्ष—भिकाल — घर्ती
समस्त पदार्थों की समस्त
प्राथम्य को एक साथ ज्ञाता
ज्ञान ।

समिति—अपने द्वारा किसी जीव
की पीड़ा न हो इस विचार
से प्रवृत्ति में यत्नाचार ।

सामान्य—अनेक पदार्थों में
समानता से व्यापक धर्म ।

सूक्ष्म—सूक्ष्म नामकर्म के उदय
से जो न तो शरीर पदार्थों की
रोकता है न शरीर से स्वयं
रुकता है ऐसा जीव ।

संशय—दुतरफा टलता हुआ

निश्चय रहित ज्ञान । जैसे
यह सीप है या चांदी ?
सुवर्ण है या पीतल ?

संसार—जन्म, मरण, योग और
वियोग आदि की प्राप्ति
योग्य प्रदेश ।

संसारी—नरक आदि गतियों में
भ्रमण करने वाला जीव ।

स्कन्ध—मिले हुए दो आदि
परमाणुओं का समूह ।

स्थावर—स्थावर नामकर्म के
उदय सहित एकैन्द्रिय जीव ।

स्वासोच्छ्वास—पेट से बाहर और
भीतर आने जाने वाली वायु ।

*** भेद संग्रह ***

Handwritten signature
मागणा के चौदह भेद

गृह्यद्वियेषु काये, जोगे वेदे कसायणायो य ।

संजमदसगलेस्ता, भविया सम्भत्त सश्लिञ्जाहारे ॥

भाषार्थ—१ गति (चार), २ इन्द्रिय (पाँच), ३ काय (छह), ४ योग (तीन), ५ वेद (तीन), ६ कषाय (पचवीस), ७ ज्ञान (आठ) ८ संयम (पाच तथा असयम व संयमासयम), ९ दर्शन (चार), १० लेश्या (छह), ११ भव्यत्व (दो), १२ सम्यक्त्व (छह), १३ संनित्य (दो) और १४ आहार (दो) ये १४ मागणाएँ हैं ॥६॥

गुणस्थान के चौदह भेद

मिच्छो सातण मिरपा, अविदसम्मा य देस वरणा य ।

निरदा पमत्त इदरो, अपून अणियट्ट सुहमो य ॥

उवसंत मीणमोहो, सजोगकेवल्लिजिणो अजोगी य ।

अउदस गुणट्ठाणाणि; कमेण सिद्धा य एणादशा ॥

भावाथ—मिथ्यात्न, मासादन, मिथ्र, अविरतसम्यक्त्न,
देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्यकरण, अनियुक्ति
करण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशातकपाय, क्षीणकपाय, मयोग
केवली और अयोगकेवली य १४ गुणस्थान हैं ॥

त्रिकथा के भेद

त्रिकथा तहा कमाया, इन्द्रियगिहा तहेन पमाओ य ।

चदु चदु पणमगेगं, होंति पमादा हु पणएरसा ॥

भानार्थ—४ त्रिकथा, ४ कपाय, ५ इन्द्रिय निद्रा और
१ प्रणय (४ + ४ + ५ + १ + १ - १५) इस प्रकार प्रमाद के
पन्द्रह भेद हैं ॥११॥

अनुप्रेक्षा—अनित्य, अशरण

सहार एकत्व अयव,

अगुचि, आसव, सवर

निजरा लोक धम और बोधि

दुलभ य १२ अनुप्रेक्षा हैं ।

अविरति—हिंसा, मूठ, चोरी,

पुशील और परिग्रह ५ ।

अकेन्द्रिय—बादर व सूक्ष्म २

या पृथ्वीकायिक आदि ५

गुप्ति—मन, वचन, काय ।

धारित्र—सामायिक, छेदोप

स्थापना परिहारविघुदि,

सूक्ष्मसाम्पराय और यथा

रथात ।

तप—अनशन ऊनोदन, मत

परिसंरथान, रसभरित्याग,

विविक्तशय्यासन, कायकलेश ।

द्रव्यप्राप्त—५ इन्द्रिय, ३ उल,

आयु और एषातोच्छ्वास १० ।

द्रव्यामत्र—ज्ञानावरणादिक ८,

उत्तरप्रकृतिरूप १५८ तथा

और भी अनेक भेद हैं ।

- धर्म—उत्तम-क्षमा, मादव, आजव सत्य शौच, समय, तप त्याग, आक्चिन्य और प्रह्लचर्य ।
- नय—निश्चय और व्यवहार २ अथवा नैगम संग्रह व्यवहार श्रुतुवन, शब्द सम मिरूढ और एवभूत ७ ।
- निष्क्रिय य—धम अधर्म, आकाश और काल ४ ।
- पार्थ—तत्र ७ और पुण्य १, तथा पाप १ कुल ६ ।
- परीपत्र—क्षुधा तृषा शीत उष्ण दशमशक गान्ध, अरति, स्त्री चर्या निषद्या, शय्या आमोश, वध याचना अलाभ रोग तृणस्पर्श मल सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन २२ ।
- पाप—द्रव्य और भाव २ ।
- पुण्य—द्रव्य और भाव २ ।
- प्रदेश—सख्यात, असख्यात और आत ३ ।
- प्राण—द्रव्य और भाव २ ।
- भात्रप्राण—ज्ञान और दशन ।
- मिध्यात्र—निपरीत एकात, विनय संशय और अज्ञान ५ ।
- त्रिकथा—स्त्रीकथा भोजनकथा, राजकथा और राष्ट्रकथा ।
- विदिशा—ईशान, वायव्य नैऋत्य, आग्नेय, ऊर्ध्व और अध ५ ।
- व्रत—अणुव्रत ५, गुणव्रत ३ और शिक्षाव्रत ४ = १२ ।
- समिति—ईर्या भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठा पना ५ ।
- स्थानर—पृथिवीकायिक, जल-कायिक, अमिकायिक, वायु कायिक और वनस्पति-कायिक ५ । अथवा वादर और सूक्ष्म २ ।



* प्रश्नपत्र, सन् १९६१ *



१—अमूर्तिक स्वदेहपरिमाणु व घनद्रव्य निश्चयार्थ, अनेक भावनाय सम्यग्ज्ञान निश्चयसम्भवकारिण, ज्ञानोद्देश सिद्ध कर परमप्याय का लक्ष्य समान लिखिय ।

२—नौ अघिकार पर्याप्तियों अस्तित्वात् मध्य, अन्तर्गत संर, पुद्गल प्रकृतियों और अन्तरात् परिग्रह क मे, लिखिये । १५

३—समस्त द्रव्यों व प्रदेश बताइय । द्रव्य पुद्गल की प्रकृत स श्राव क्या समझते हैं ? अमूर्त मंत्र की सिद्धि कीय ? अन्तर्गत और ज्ञान की उत्पत्ति का मम दर्शाइय । १०

४—अघिकार की जीवनी लिखकर अन्तर्गत अन्तर्गत का कारण लिखिये । १०

५—घर्म वा घनद्रव्य में, अग्निघन क अन्तर्गत कण्डा वा वध में भावनाय वा द्रव्यवध में अन्तर्गत कण्डा में विनया वा मोक्ष म सम्यग्दर्शन वा दर्शनार्थके अन्तर्गत वा सिद्ध में अन्तर दर्शाइये । १०

६—कालद्रव्य के अस्तित्वात् न होने का अन्तर्गत अन्तर्गत इन्द्रिय जीव व प्रदेश - प्राण पर्याप्तिया ज्ञानार्थक अन्तर्गत । अन्तर्गत अन्तर्गत और अन्तर्गत होने का कारण लिखिये । १०

७—पटद्रव्य, नवपदाय, गुणवत् अन्तर्गत, अन्तर्गत अन्तर्गत, अन्तर्गत म से किसी एक सिद्धि का अन्तर्गत लिखिये ।



* प्रश्नपत्र, सन् १९६१ *



१—जीवत्त्व, भोक्तृत्व ऊर्ण्यगमनत्व, अथमद्रव्य, आकाशत्व, अस्तित्वात्त्व, द्रव्यतात्त्व, निश्चयमोक्षभाग, दर्शनोपयोग, व्यवहारम्यक्चारित्र्य आदि अस्तित्व का लक्षण लिखिये । १३

२—अधर्म वा अधमद्रव्य में, ज्ञानोपयोग वा सम्पत्ज्ञान में, तत्त्वत्व वा द्रव्यत्त्व में, जनप्यवसाय वा दर्शनोपयोग में, ज्ञानोपयोग वा दर्शनोपयोग में, निश्चय वा व्यवहार में, तथा भावमोक्ष वा तत्त्वमोक्ष में अन्तर दर्शाइय । १०

३—सौन्दर्य, प्राण जीवसमाप्त, पुद्गल की पर्याय, भावतात्त्व, प्रमाद, गुणस्थान, समुदात और बहिरङ्ग परिमद के भेद बताइय । ११

४—समुदात, जीवसमाप्त, गुणस्थान, मागणा, पयाति, प्राण, अणु मूर्तिक से आप क्या समझते हैं । १०

५—पचास्तिकाय, निद्रगुण, सप्ततर परमणी, मोक्षभाग में से किसी एक विषय पर दो पृष्ठों में निरूपण लिखिये । १२

६—रश्मिपरिमाणत्व, परमाणु के अस्तित्वात्त्व, कालद्रव्य के अस्तित्वात्त्व का निषेध, राली घड़े में रहने वाली द्रव्यें, त्याग्य और प्राण तत्त्व, छद्म और शोणह अक्षरों के मंत्र और ध्यान से लाभ बतलाइय । १०

७—आत्मा की ही निश्चयमोक्षभाग माननी, मुक्त जीव के सिद्धशिला से आगे न जानी और ससार में न आने का कारण बतलाइये । १२



